साक्षात्कार

डॉ. विकास दवे
सम्पादक

ISSN : 2456-1924

साक्षात्कार

सितम्बर, 2020
अंक : 483

सम्पादकीय एवं ग्राहकीय पत्र-व्यवहार : निदेशक/सम्पादक, साहित्य अकादमी, संस्कृति भवन, बाणगंगा, भोपाल-462003

फ़ोन : 0755 - 2554782 (कार्यालय)

साक्षात्कार की प्रकाशनार्थ रचनाओं के लिए
email - sakshatkarnew@gmail.com पर मेल करें।

वार्षिक सहयोग राशि

व्यक्तिगत ग्राहकों के लिए : ₹ 250

संस्थाओं के लिए : ₹ 300

आजीवन : ₹ 3,000

यह अंक : ₹ 25 (रजिस्टर्ड डाक खर्च अतिरिक्त)

समस्त बैंक ड्रॉफ्ट/मनीआर्डर '**निदेशक, साहित्य अकादमी, भोपाल**' के नाम स्वीकार्य होंगे।

आवरण : अमरजीत कुमार

रेखांकन : गायत्री यादव, महू

आकल्पन : राकेश सिंह

मुद्रण : मध्यप्रदेश माध्यम, अरेरा हिल्स, भोपाल

'साक्षात्कार' में प्रकाशित रचनाकारों के विचार अपने हैं। सम्पादक या साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन का उनके विचार के प्रति सहमत होना आवश्यक नहीं है।

साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश का मासिक प्रकाशन

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय // 05

बातचीत

वरिष्ठ साहित्यकार परशुराम शुक्ल से // 07

आलेख

डॉ. दिनेश पाठक 'शशि' ब्रज के हिंडोले और घटाएँ // 20
शंकर लाल माहेश्वरी अष्टछाप के कवि // 26
राजेन्द्र सिंह गहलोत लोकजगत की पाठकीय अभिरुचि और साहित्य // 29
जीवन सिंह ठाकुर सांस्कृतिक मूल्य और हमारी जड़ें // 35
प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय समकालीन हिंदी कविता में बाज़ारवाद // 43
डॉ. पवन कुमार खरे महाराजा छत्रसाल का स्वराज और स्वतंत्रता अभियान // 48
डॉ. जयश्री वाडेकर मीडिया और राष्ट्रभाषा हिंदी // 52
प्रमोद भार्गव संकट में हैं वनवासियों की बोली और भाषाएँ // 56

संस्मरण

प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल काले पानी का देवता // 59

कविताएँ

महिमा परसाई वसंत // 66
अदिति कुमार त्रिपाठी अर्हन्–गान // 72
जगदीश सिंह रावत हिंदी का इंद्रधनुष // 74
यामिनी नयन गुप्ता प्रेम की इबारत // 75
शैलेन्द्र शरण सच को, सच की तरह बचाने के लिये // 78
विकेश कुमार बडोला झरता अश्विन // 82
जय चक्रवर्ती औरत सब कुछ जानती // 83
विनय कुमार त्रिपाठी कश्मीर देश का भाल // 85
सविता दास सवि सशक्त जो होती है स्त्री // 87

अश्वघोष दो ग़ज़लें // 90
गौरी शंकर वैश्य विनम्र जगमग दीवाली // 92

अनुवाद
राजेंद्र प्रसाद मिश्र समधर्मा // 93

कहानी
अरुण अर्णव खरे कोचिंग // 96

लघुकथा
नीरज त्यागी माँ की आस // 105

समीक्षा
मनीष वैद्य जीवन की धड़कन : नव अर्श के पाँखी // 106
राम पांडेय आधुनिक हिंदी कविता को समृद्ध करती कविताएँ // 109
डॉ. भूपेन्द्र हरदेनिया जनपदीय भारत में अन्त्यजीय संवेदना का धर्मशास्त्र // 112
डॉ. ब्रह्मजीत गौतम मुट्ठी भर मरोड़ // 120

संपादकीय

आत्मीय पाठक बंधु/भगिनीगण,

सादर प्रणाम।

साक्षात्कार का सितंबर अंक आपके हाथों में सौंपते हुए प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। इस अंक में लेखन की दृष्टि से सहयोग देने वाले सभी रचनाकारों को धन्यवाद और बधाई।

कोई भी रचनाकार जब अपनी रचना को सजा सँवार कर तैयार कर लेता है तो स्वाभाविक रूप से उसके मन में एक ही इच्छा जागृत होती है की यह रचना कहीं प्रकाशित हो जाए। अनेक रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते-होते जब इनकी संख्या पचास-सौ हो जाती है तो मन में एक आस जागती है क्या अन्य बड़े रचनाकारों की तरह मेरी भी कोई पुस्तक प्रकाशित हो सकती है? यह भाव नई उम्र के नवोदित रचनाकारों से लेकर ऐसे रचनाकारों में भी उत्पन्न होता है जिनकी अवस्था तो बहुत हो गई है, लिखते हुए भी अनेक वर्ष हो गये हैं किंतु आर्थिक अभावों के कारण वे अपनी कोई पुस्तक प्रकाशित करने में सक्षम नहीं हो पाये।

मध्य प्रदेश साहित्य अकादमी का यह सौभाग्य है कि हमारे पास ऐसे नवोदित रचनाकारों की प्रथम कृति को प्रकाशित करने के लिए अनुदान देने की व्यवस्था बनी हुई है। प्रतिवर्ष अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लेखकों के लिए प्रथम कृति के प्रकाशन हेतु पांडुलिपियाँ स्वीकृत करने का प्रावधान है। इसी प्रकार अनारक्षित एवं अन्य विपछड़ा वर्ग के लिए भी बीस पांडुलिपियों के प्रकाशन की व्यवस्था बनी हुई है। स्वाभाविक रूप से प्रथम कृति प्रकाशन अनुदान योजना हेतु पांडुलिपियों के रूप में प्रविष्टियाँ तो बहुत बड़ी मात्रा में प्राप्त होती हैं किंतु रचनाओं और कृतियों का स्तर उतना अच्छा नहीं होता कि बनायी गई विद्वज्जनों की चयन समिति उन्हें प्रकाशन करने योग्य पा सकें।

नई पीढ़ी के नवोदित रचनाकारों से मेरा सतत् सोशल मीडिया और दूरभाष के माध्यम से संपर्क बना रहता है। साथ ही समाचार-पत्र और पत्रिकाओं के माध्यम से भी इस प्रकार की विज्ञप्ति और सूचनाएँ नवोदित रचनाकारों तक पहुँचाने का प्रयास हो रहा है। आप सभी साहित्यकारों से निवेदन है कि अपने आस-पास लेखन कर्म से जुड़े ऐसे साहित्यकारों को खोजते रहिए और उन्हें इस प्रकार की योजनाओं का परिचय देकर पांडुलिपि भेजने हेतु प्रोत्साहित भी करिए। हम देखते हैं कि इन दिनों नई पीढ़ी ने इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों की बहुलता के कारण पढ़ना छोड़ दिया है। ऐसी स्थिति में लिखना तो अब और कठिन लगने लगा है। समाज की स्थिति इतनी निराशाजनक भी नहीं है। आज भी चलते फिरते अनेक ऊर्जावान युवा रचनाकारों से मिलना होता रहता है। संभावनाएँ क्षीण

नहीं हुई है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि आप जैसे वरिष्ठ रचनाकार इस नई पीढ़ी को सीखाने में थोड़ा समय अवश्य दें।

आइए हम सब मिलकर उन रचनाकारों को भी अवगत कराएँ जो आर्थिक कारणों से बहुत अच्छा स्तर का लेखन प्रचुर मात्रा में कर लेने के बाद भी जानकारियों के अभाव में अपनी पुस्तकों का प्रकाशन नहीं कर पा रहे हैं।

आशा है आप सब भी साहित्य अकादमी परिवार के सदस्य होने के नाते इस संदेश को साहित्यकारों तक पहुँचाने में सहयोग प्रदान करेंगे। हो सकता है साक्षात्कार पत्रिका के संपादकीय में आप सबको इन योजनाओं का प्रचार करना ठीक नहीं भी लग रहा होगा किंतु अपनी पत्रिका इस प्रकार के संदेश को समाज व्यापी बनाने में सक्षम सिद्ध होती है यह जानता हूँ।

इसलिए अभी प्रारंभ में मैं प्रयास कर रहा हूँ कि कि इन संदेशों के प्रचार-प्रसार के लिए साक्षात्कार के संपादकीय को माध्यम बनाया जाए। ज्ञान चर्चाएँ तो होती रहेंगी आज आवश्यकता इस बात की है कि आप सब के लिखे हुए को पढ़ने वाले अच्छे पाठक भी समाज में तैयार हों। स्वाभाविक रूप से यह सभी योजनाएँ आप सबके लिखे श्रेष्ठ साहित्य को पढ़ने के लिए अच्छे पाठक भी तैयार करेंगी।

अग्रिम धन्यवाद सहित...।

आपका ही

डॉ. विकास दवे

सम्पादक

अपनी पत्रिका के शीर्षक के अनुरूप भारत भर के वरिष्ठ रचनाकारों से संवाद स्थापित करते हुए साक्षात्कार लेकर उनकी साहित्य यात्रा और रचना कर्म से अन्य रचनाकारों को परिचित करवाना यह इस स्तम्भ का मुख्य हेतु रहेगा। यूँ तो 'साक्षात्कार' पत्रिका अपने नाम के अनुरूप इस तरह के साक्षात्कारों का पहले भी प्रकाशन करती रही है किंतु इसमें एक प्रयोग प्रारंभ किया है। विगत दिनों भारतीय साहित्यिक पत्रकारिता के संदर्भ में एक पुस्तक पढ़ते हुए श्रद्धेय माखनलाल चतुर्वेदी जी और धर्मवीर भारती जी के संबंध में एक आलेख पढ़ते हुए यह ध्यान में आया था कि कोई भी साहित्यकार पत्रिका का संपादक बनते ही अपने आप को एक अलग पाले में खड़ा कर लेता है और रचनाकारों को दूसरे पाले में खड़ा कर देता है। यदि संपादक और रचनाधर्मियों के बीच सीधा संवाद स्थापित करने की सुचारू व्यवस्था बन जाए तो स्वाभाविक रूप से वह साहित्यिक पत्रिका साहित्यकार पाठकों के लिए भी अत्यंत आत्मीय हो जाती है। बस इसी बात को ध्यान में रखकर यह सोचा है की पत्रिका में संपादकीय का आकार भले थोड़ा छोटा रहे किंतु मैं स्वयं चर्चा करके वरिष्ठ रचनाकारों के साक्षात्कार लूँ और उन्हें आप सबके समक्ष रखूँ। इस बहाने मेरा तो प्रशिक्षण होगा ही आप सब भी इन रचनाकारों के जीवनानुभवों से बहुत कुछ प्राप्त कर सकेंगे। इसी शृंखला में प्रस्तुत है यह साक्षात्कार।-सम्पादक

परशुराम शुक्ल से विकास दवे की बातचीत

डॉ. विकास दवे : आपने लेखन की शुरुआत कब और किस परिवेश में की?

श्री शुक्ल : मैंने अपने लेखन का आरम्भ दस-बारह वर्ष की आयु में ही कर दिया था। परिवार के आर्थिक संकट ने जीवन को बचपन से ही संघर्षमय बना दिया था। यही संघर्ष मेरे लेखन की प्रेरणा बना। कभी-कभी तो मैं स्कूल न जाकर गंगा नदी के पुल पर जाकर खड़ा हो जाता था और उठती-गिरती लहरों को देखता रहता था और मानव जीवन के बारे में सोचता रहता था।

आरम्भ में मैंने सामान्य स्तर की तीन कहानियाँ लिखी। इनमें से तीनों कहानियों की मुझे याद है- बलिदान, दहेज और एक शाम। ये कहानियाँ लम्बे समय तक सुरक्षित रहीं। इनमें से 'दहेज' बुन्देलखण्ड कॉलेज की वार्षिक पत्रिका में प्रकाशित हुई। इसका एक स्कूल में मंचन भी हुआ। ये तीनों कहानियाँ सामाजिक समस्या प्रधान थीं।

मैंने क्राइस्ट चर्च कॉलेज, कानपुर से बी.ए. और एम.ए. किया और सन् 1971 में इसी कॉलेज में प्रवक्ता पद पर नियुक्त हो गया। क्राइस्ट चर्च कॉलेज के छात्र जीवन में खूबसूरत लड़कियों से प्रेरित होकर मैंने तीस-चालीस शृंगार प्रधान कविताएँ लिखी और एक प्रतियोगिता हेतु एक ग़ज़ल भी लिखी। कॉलेज में प्रवक्ता हो जाने के बाद लेखन कार्य बन्द हो गया। पूरा समय पढ़ाने की तैयारी करने में जाता था।

डॉ. विकास देव : अपनी सेवाओं की स्मृति से कुछ बताईए? कैसे अनुभव कर रहे?

श्री शुक्ल : क्राइस्ट चर्च कॉलेज की नौकरी अस्थाई थी। अत: शीघ्र ही छोड़नी पड़ी और

कुछ समय बेकार रहने के बाद में अग्रसेन महाविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग में प्रवक्ता हो गया। मऊरानीपुर मुझे पसन्द नहीं आया, मैनेजमेंट से भी मेरी नहीं पटी। इसलिए यह नौकरी भी छोड़नी पड़ी। सन् 1974 में मेरी नियुक्ति बुन्देलखण्ड कॉलेज, झाँसी में हो गई। इस कॉलेज से मै सन् 2009 में समाजशास्त्र विभागाध्यक्ष के पद से सेवानिवृत्त हुआ।

कानपुर में अपने छात्र जीवन में मैं बेड़िया विमुक्त जाति के सम्पर्क में आया। यह एक विलक्षण विमुक्त जाति है। ये लोग अपनी बेटियों का स्थाई विवाह नहीं करते तथा अपने बेटों का विवाह कंजर, हबूड़ा आदि विमुक्त जातियों की लड़कियों से करते हैं। इनमें दहेज के स्थान पर कन्या मूल्य का प्रचलन है। अर्थात् लड़के के माता-पिता, लड़की के माता-पिता को धन देते हैं।

बेड़िया विमुक्त जाति में और भी विलक्षण प्रथाएँ और परम्पराएँ थीं। इसलिए मैंने इनसे निकटता बढ़ाने और इनका अध्ययन करने का निश्चय किया। ट्यूशन इसका माध्यम बना। मैंने पद्मश्री गुलाब बाई से बात की। वह सहर्ष अपने, अपनी बहन पत्ता बाई और भाई सूबेदार सिंह के बच्चों को ट्यूशन पढ़वाने के लिए तैयार हो गयीं। इस प्रकार मेरा इनके घर में प्रतिदिन का आना-जाना आरम्भ हुआ।

गुलाब बाई के घर में मैंने देखा कि इनकी लड़कियाँ पूरी तरह स्वतंत्र रहती हैं। किन्तु बहु पर्दा करती हैं, बाहरी लोगों से बात नहीं करती है, खाना बनाती है आदि। पूछने पर बाई ने बताया कि बेटियाँ उनकी रोटी-रोजी हैं, जबकि बहू से खानदान चलता है। यहाँ मेरी कंजर, हबूड़ा आदि से भी भेंट हुई। ये विमुक्त जातियाँ बेड़ियों से भी अधिक रोचक और विलक्षण परम्पराओं वाली थीं।

इसके बाद मुझे नौकरी के लिए कानपुर छोड़ना पड़ा। 1974 में बुन्देलखण्ड कॉलेज, झाँसी आने के बाद मेरे जीवन में कुछ स्थिरता आयी और मैंने पुनः लेखन कार्य आरम्भ किया। यहाँ आपको यह स्पष्ट कर दूँ कि इसके पहले मऊरानी में मैंने समाजशास्त्र की छह पुस्तकें लिखी-1. समाजशास्त्र के सिद्धान्त, 2. परिचयात्मक समाज शास्त्र 3. भारत के सामाजिक नियन्त्रण 4. भारत में सामाजिक परिवर्तन 5. भारत में सामाजिक स्तरीकरण और 6. भारतीय समाज और जाति व्यवस्था।

डॉ. विकास देव : भारत भर के मोघिया समाज में आपके प्रति बहुत श्रद्धा का भाव है। यह सब कैसे हुआ?

श्री शुक्ल : बुन्देलखण्ड कॉलेज, झाँसी आने के बाद मेरा सम्पर्क मोघिया और कबूतरा जैसी पूर्व-अपराधी जनजातियों (विमुक्त जातियों) से हुआ। मोघिया देशी जड़ी-बूटियों का धंधा करते हैं और शक्तिवर्धक देशी दबाएँ तैयार करते हैं। ये अपने आपको शिलाजीतवाला कहते हैं।

विमुक्त जातियों की एक प्रमुख विशेषता यह होती है कि इनमें गैर बिरादरी के लोगों से सच बोलना अपराध माना जाता है तथा ऐसा करने पर इनकी पंचायत इन्हें कठोर सजा देती है। यहीं कारण है कि सभ्य समाज इनकी प्रथाओं, परम्पराओं, रीतिरिवाजों से आज भी अनजान है। इस बात का मुझे शीघ्र ही पता चल गया।

मेरी श्रीमती डॉ. विभा दतिया के पी.जी. कॉलेज में नौकरी करती थीं और मैं बुन्देलखण्ड कॉलेज, झाँसी में। महिलाओं को प्रतिदिन अप-डाउन में परेशानी होती है। इसलिए मैं दतिया मे रहता

था और प्रतिदिन दतिया-झाँसी अप-डाउन करता था।

दतिया में पीताम्बरापीठ के ठीक सामने मोघियों के लगभग 40-50 डेरे हैं। मैं यही से झाँसी के लिए बस पकड़ता था। मैं कंजरों, बेड़ियों, हबूड़ों आदि से पूर्व परिचित था। इसलिए मोघिया स्त्री-पुरुषों को देखते ही समझ गया कि यह एक विमुक्त जाति है। अब मैंने इनका गहन अध्ययन करने का निश्चय किया।

सर्वप्रथम मैंने मोघियों के मुखिया अर्जुन सिंह से भेंट की। इसके बाद उनसे लगभग प्रतिदिन मिलने लगा। जब मेरी बस लेट हो जाती थी तो मैं खड़ा-खड़ा अर्जुन सिंह से बातें करता रहता था। कुछ दिन बाद अर्जुन सिंह ने कुर्सी डालना आरम्भ कर दिया। मैं कभी-कभी अर्जुन सिंह से माँग कर पानी भी पी लेता था। यह अर्जुन सिंह और उनके घर वालों को बहुत अच्छा लगता था। क्योंकि दतिया के लोग इन्हें अछूत समझते थे और इनसे दूर रहते थे।

एक दिन मैंने अर्जुन सिंह को अपने घर टी.वी. पर 'रामायण' देखने के लिए आमंत्रित किया। वह सहर्ष तैयार हो गया और रविवार को 'रामायण' के समय अपने दोनों बेटों के साथ आ गया। मैंने उसे और उसके बच्चों को कुर्सी पर बैठाया, चाय-बिस्कुट दिये और हम सबने रामायण देखी।

अर्जुन सिंह अगली बार अपने 4-5 मित्रों को ले आया। मेरे घर में इतनी कुर्सियाँ नहीं थी। सबने जमीन पर बैठ कर रामायण देखी। शीघ्र ही मोघियों की स्त्रियाँ और इनकी बड़ी लड़कियाँ भी आने लगीं।

इनकी बढ़ती संख्या देखकर मैंने नीले रंग की एक दरी खरीद ली और ब्रिटेनियाँ के बड़े-बड़े पैकेट मँगा लिए। सभी मोघिया प्रत्येक रविवार को आते, रामायण देखते और चले जाते। एक-दो बार इनके साथ दतिया के बाहर के मोघिया परिवार भी आये। मैंने हमेशा सबका स्वागत किया।

इस मध्य मैंने यह देखा कि अर्जुन सिंह की पत्नी अंगूरी दरी पर न बैठकर जमीन पर बैठती है। अर्जुन सिंह से पूछने पर मालूम हुआ कि वह 'पारुआ' गोत्र का है और पारूआ की देवी 'नजीनी' नीले कपड़े पहनती है। इसलिए उसकी पत्नी दरी पर नहीं बैठती है। यह मेरी पहली सफलता थी।

मैं प्राय: छुट्टियों में भोपाल जाता था। भोपाल में मैंने विमुक्त जातियों के कल्याण सम्बन्धी योजनाओं की जानकारी लेनी आरम्भ की। इससे इन्हें जमीन के पट्टे, मकान बनाने, दुकान खोलने के लिए तथा इसी प्रकार के कार्यों के लिए अनुदान मिलने लगा।

शीघ्र ही मैं दतिया के साथ पूरा भारत के मोघियों में लोकप्रिय हो गया। एक बार इनकी एक बड़ी पंचायत हुई तथा सबने मेरे परिवार को अपनी बिरादरी में सम्मिलित करने का निर्णय लिया। इसके बाद एक शादी के अवसर 'पंच प्याला' करने मेरे परिवार को मोघियों ने अपनी बिरादरी में सम्मिलित कर लिया। अब मैं इनकी महिलाओं के नाच छोड़कर इनकी सभी गतिविधियों में भाग ले सकता था।

शीघ्र ही मुझे पता चला कि इनमें आज भी अग्नि परीक्षा, जल परीक्षा आदि होती है। इनमें

यदि कोई स्त्री अपने मकान की छत पर चली जाये तो वह 'उलाक' (अपवित्र) हो जाता है और उसे तोड़ना पड़ता है, चाहे वह एक करोड़ का हो।

बस, मुझे विषय मिल गया। मैं ऐसे विषय पर हिन्दी में लेखन करना चाहता था, जिस पर मुझसे पहले किसी ने न लिखा हो। मोघियों से मुझे ऐसा ही विषय मिल गया।

शीघ्र ही अनेक शोधपरक आलेख और पुस्तकें तैयार हो गईं। इनमें एक पुस्तक 'मोघिया विमुक्त जाति का सांस्कृतिक अध्ययन' आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी, भोपाल ने 2019 में प्रकाशित की है। इसमें मोघियों के सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक जीवन के साथ ही इनकी विलक्षण प्रथाओं, परम्पराओं, रीतिरिवाजों की विस्तार से चर्चा की गई है।

डॉ. विकास देव : विमुक्त जातियों पर लेखन छोड़कर आपने बाल साहित्य सृजन क्यों अपनाया?

श्री शुक्ल : मैंने आपको बताया कि मैं प्रतिदिन दतिया-झाँसी अप-डाउन करता था।

हमेशा की तरह मैं 15 अक्टूबर 1999 को दतिया से झाँसी जा रहा था। अभी मेरी बस ने दतिया से 5-6 किलोमीटर की दूरी तय की थी कि सामने से तेज गति से आ रही एक जीप को बचाने के चक्कर में बस का एक्सीडेन्ट हो गया। 4-5 लोग घटना स्थल पर ही मर गए। लगभग आधे लोग बुरी तरह घायल हो गए।

इसी समय टूटी-फूटी बस के पास से एक थानेदार गुजरे। वे दतिया से झाँसी जा रहे थे तथा बहुत भले इन्सान थे। उन्होंने बस दुर्घटना की सूचना दतिया की कलेक्टर, एस.पी., सी.एम.ओ. आदि को दे तथा झाँसी से दतिया जा रही एक बस को रोककर, उसे खाली करवा कर, हम लोगों को दतिया जिला अस्पताल भेजने की व्यवस्था की। जिस समय घायलों से भरी बस अस्पताल पहुँची कलेक्टर अलका उपाध्याय, डॉक्टर और अस्पताल के अन्य लोग पूरी तैयारी के साथ पहले से खड़े थे।

मैं बेहोश था। इसलिए मुझे मृतकों के साथ सफेद चादर ओढ़ाकर लिटा दिया गया। मैं बेहोशी में भी सब कुछ समझ रहा था। अचानक मेरे भीतर कहीं से शक्ति-सी आयी और मैंने आँखे खोल दी। मेरी दृष्टि डेन्टल सर्जन डॉ. तिवारी पर पड़ी। मैंने उनसे कुछ कहा। क्या कहा, याद नहीं। किन्तु मेरे कानों से डॉक्टर तिवारी की आवाज टकरायी- ''अरे प्रोफेसर जिन्दा है... अरे प्रोफसर जिन्दा है।'' इसके पहले मेरे मरने का समाचार मेरी पत्नी प्रोफेसर विभा को भेज दिया गया था।

शीघ्र ही विभा अस्पताल पहुँच गईं। मेरी स्थिति अत्यन्त गंभीर थी- सर फट गया था, 17 टॉके आए, सीने की हड्डी टूट गई थी, दो पसलियाँ टूट गई थी, सरवाइकल 5 और 6 में चोट आई थी, दाहिने कंधे में कई जगह फैक्चर हो गए थे। दतिया जिला अस्पताल में मुझे प्राथमिक चिकित्सा दी, एक दिन रखा और अगले दिन ग्वालियर रेफर कर दिया।

मैं कैसे ठीक हुआ, यह एक लम्बी कहानी है किन्तु लगभग तीन महीने बाद जब ठीक हुआ तो मुझे कई फोबिया हो गए थे- दीवारें चलती हुई दिखाई देती थी। मुझे लगता था कि मैं छत, फर्श और दीवारों के बीच में पिस कर मर जाऊँगा। ऐसा होने पर मेरा शरीर पसीने-पसीने हो जाता था और मैं घर से निकल कर खुले आसमान के नीचे आ जाता था तथा दस-पाँच मिनट में सामान्य हो

जाता था। किसी व्यक्ति द्वारा दरवाजा खटखटाने पर मैं घबरा जाता था और छिपने का प्रयास करता था। मुझे लगता था कि आने वाला व्यक्ति मुझे मारेगा या मार डालेगा। इसी तरह मेरी मैमोरी पूरी तरह समाप्त हो गई थी। मैं अपनी पत्नी बेटा और बेटी के अलावा किसी को नहीं पहचान पाता था। यह स्थिति कई सालों तक बनी रही। आदिवासियों अथवा विमुक्त जातियों का अध्ययन किताबे पढ़कर अथवा कल्पना के आधार पर नहीं किया जा सकता। इसके लिए अर्ध-सहभागी अध्ययन आवश्यक होता है। मैं इसके योग्य नहीं रह गया था, अत: मुझे विमुक्त जातियों का अध्ययन छोड़ना पड़ा। यदि मेरा एक्सीडेन्ट न हुआ होता तो मैं आज भी इन्हीं जातियों का अध्ययन कर रहा होता।

अबमैं आपको बताऊँ कि मैं बालसाहित्य के क्षेत्र में क्यूँ आया। मैंने अभी विमुक्त जातियों की चर्चा की। विमुक्त जातियों की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इनमें हत्या से लेकर चोरी तक के मामलों का फैसला पंचायत में किया जाता है और एकमत से किया जाता है। इनमें पंचायत में चोर को चोर नहीं कहा जा सकता, बल्कि आरोप लगाने का काम एक लोक कथा के माध्यम से किया जाता है। इसी प्रकार सफाई देने का कार्य, यहाँ तक कि सुझाव देने का कार्य भी लोक कथाओं के माध्यम से किया जाता है। ये लोककथाएँ नैतिक मूल्यों से युक्त तथा व्यवहारिक होती हैं। पंचायत का मुखिया इन्हीं लोक कथाओं के आधार पर निर्णय करता है।

मैं इन लोक कथाओं से बहुत प्रभावित था तथा इनसे प्रेरित होकर मैंने अनेक बालोपयोगी कहानियाँ लिखीं। मेरी पहली कहानी 'बड़ा कौन' नंदन में अक्टूबर 1986 में प्रकाशित हुई। कुछ बाल कहानियाँ पराग, अच्छे भैया, बाल भारती लोटपोट, मधु-मुस्कान आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई।

एक्सीडेन्ट होने के बाद ठीक होने पर मैं पूरी तरह बाल साहित्यकार बन गया और बालसाहित्य की विभिन्न विधाओं पर लिखने लगा।

डॉ. विकास दवे : अधिकांश बाल साहित्यकार बाल साहित्य को बचकाना लेखन समझते हैं। कुछ प्रौढ़ साहित्य में सम्मान पुरस्कार आदि भी बहुत हैं। आपके 'कबूतरा' विमुक्त जाति पर बनाये गए नोट्स के आधार पर बहुत सा **स्त्री** साहित्य लिखा गया। आप बहुत स्तरीय प्रौढ़ साहित्य लिख सकते थे, फिर बाल साहित्य क्यों?

श्री शुक्ल : विकास जी, बाल साहित्य के महत्त्व को बंगला के साहित्यकारों ने ठीक से समझा है। बंगला साहित्यकारों में रविन्द्रनाथ टैगोर, सुकुमार राय, शैलेन घोष, सरल देव, शिशेन्द्र भुखोपाध्याय, महाश्वेता देवी आदि ने प्रौढ़ साहित्य के साथ ही प्रचुर मात्रा में बाल साहित्य का सृजन किया है। बंगला साहित्यकार उस साहित्यकार को साहित्यकार ही नहीं मानते, जिसने बाल-साहित्य का सृजन न किया हो।

हिन्दी में भी ऐसे प्रौढ़ साहित्यकारों की लम्बी सूची है, जिन्होंने प्रौढ़ साहित्य के साथ बाल साहित्य भी लिखा है। तुलसी और सूर से लेकर अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधर पाठक, सोहनलाल द्विवेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, प्रेमचन्द, मैथिली शरण गुप्त, महादेवी वर्मा, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत, रामधारी सिंह 'दिनकर' माखनलाल चतुर्वेदी, हरिवंश राय 'बच्चन' भवानी प्रसाद मिश्र, शेर जंग गर्ग, विष्णु प्रभाकर, कमलेश्वर, नागार्जुन आदि ने भी प्रौढ़ साहित्य के

साथ बाल साहित्य का भी सृजन किया है। लेकिन यह सच है कि प्रौढ़ साहित्य लिखने वाले हिन्दी साहित्यकार बाल साहित्य के महत्त्व के ठीक से समझ नहीं सके। क्योंकि महाश्वेता देवी के शब्दों में ''शिशु साहित्य लिखने के लिए जिस टैलेण्ट की जरूरत होती है, वह सामान्य नहीं है। शिशु साहित्य एडल्ट साहित्य से ज्यादा टैलेण्ट की माँग करता है।''

विख्यात समीक्षक, आलोचक नामवर सिंह ने भी यह स्वीकार किया है कि ''प्रौढ़ साहित्य से भी ज्यादा चुनौती भरा काम है- बाल साहित्य लिखना।'' नामवर सिंह ने बाल साहित्य में तीन चीजों को आवश्यक माना है- 1.बच्चों की दृष्टि से देखी गई दुनियाँ, 2.प्रकृति चित्रण और 3. समाज चित्रण। उन्होंने यह माना है कि बाल साहित्य से ही साहित्यकार की प्रतिभा का पता चलता है। उन्होंने यह सुझाव दिया है कि छन्द तोड़कर लिखी बाल कविता अनुपयोगी होती है।

हम मानते हैं कि 'चाइल्ड इज़ द फादर आफ मैन' तथा 'बच्चे देश के भावी नागरिक होते हैं।' फिर भी प्रौढ़ साहित्यकारों द्वारा बाल साहित्य उपेक्षित है। विख्यात लेखक और आलोचक मैनेजर पाण्डेय ने इसका कारण 'बाल साहित्य में आलोचना' की कमी को माना है। मैनेजर पाण्डेय का मत है कि ''मुख्य धारा के आलोचकों की बाल साहित्य में कोई रुचि नहीं है। वे बाल साहित्य पढ़ते ही नहीं तो आलोचना का प्रश्न ही नहीं उठता।''

इस सबके बाद भी हिन्दी साहित्यकारों में बहुत से ऐसे साहित्यकार हैं, जिन्होंने बाल साहित्य के महत्त्व को समझा और अपना सम्पूर्ण जीवन बाल साहित्य की सेवा में समर्पित कर दिया। द्वारिका प्रसाद महेश्वरी, निरंकार देव 'सेवक' श्री प्रसाद राष्ट्रबन्धु हरिकृष्ण देवसरे आदि इसी प्रकार के साहित्यकार हैं।

अब आइये, सम्मान और पुरस्कारों की बात की जाए। मैंने कभी सम्मान और पुरस्कार की अपेक्षा नहीं की और नहीं इस दृष्टि से लेखन किया। यह बात और है कि मुझे पर्यावरण मंत्रालय, मानव संसाधन एवं विकास मंत्रालय, पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश आदि के द्वारा सम्मानित और पुरस्कृत किया जा चुका है।

यह सच है कि मैत्रेयी पुष्पा जी जैसी बड़ी रचनाकार ने कबूतरा विमुक्त जाति पर एकत्रित की गई जानकारियों के आधार पर अपना विख्यात उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' लिखा। इस सम्बन्ध में इससे अधिक कुछ कहना नहीं चाहूँगा।

आपने ठीक ही कहा है कि मैं स्तरीय प्रौढ़ साहित्य लिख सकता था। मैंने लिखा भी। पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं। बड़ो की कहानियाँ 'प्रतिबिम्ब' शीर्षक से, कविताएँ सुनो पाथिक शीर्षक से, ग़ज़ल संग्रह 'धूप की छाँह' शीर्षक से, लघुकथाएँ और चुटकुले 'इन्द्रधनुषी' लघु कथाएँ और चुटकुलें शीर्षक से आदि। किन्तु मुझे प्रौढ़ साहित्य लिखने में आनन्द नहीं मिला। इसलिए मैंने बाल साहित्य के प्रति अपने को पूरी तरह समर्पित कर दिया।

डॉ. विकास दवे : पंचतंत्र, हितोपदेश, जातक कथाएँ आदि के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं? आप इन्हें किस दृष्टि से देखते हैं?

श्री शुक्ल : संस्कृत में बाल साहित्य की एक समृद्ध परम्परा रही है। पंचतंत्र, हितोपदेश,

जातक कथाएँ आदि बाल साहित्य के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं। इनका महत्त्व इसी बात से समझा जा सकता है कि विश्व की अनेक भाषाओं में इनका अनुवाद किया जा चुका है।

संस्कृत की गणना विश्व की सर्वाधिक स्तरीय भाषा के रूप में की जाती है। इनमें अन्य विषयों के साथ ही बाल साहित्य को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

भारत के प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में भी बाल साहित्य देखने को मिलता है। पुराणों से लेकर रामायण और महाभारत तक में बालोपयोगी कथाएँ देखी जा सकती हैं। ये बाल कथाएँ बच्चों का मनोरंजन करने के साथ ही साथ उनका नैतिक विकास करने और उन्हें जीवन मूल्यों से परिचित कराने में सक्षम हैं। इनकी उपयोगिता को देखते हुए मैंने भी 'प्राचीन ग्रन्थों पर आधारित बाल कहानियाँ' लिखी हैं।

संस्कृत बाल साहित्य परम्परा को आगे बढ़ाने का कार्य भारत में केवल बंगला साहित्यकारों ने किया। इस सम्बन्ध में मैं अभी-अभी आपको विस्तार से बता चुका हूँ।

बाल साहित्य के क्षेत्र में हिन्दी साहित्यकार बहुत पीछे हैं। बहुत विचार करने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि इसके पीछे तथा कथित प्रगतिशील तथा जनवादी विचारधारा है। आज के अधिकांश प्रौढ़ लेखक इन विचारधाराओं के कट्टर समर्थक हैं। वे भारतीय जीवन मूल्यों और राष्ट्रवादी विचारधारा के विरोधी से हैं। बाल साहित्य जीवन मूल्यों और राष्ट्रवाद की बात करता है। अत: ये बाल साहित्य की उपेक्षा करते हैं और बाल साहित्य को साहित्य ही नहीं मानते हैं। इन साहित्यकारों ने देश की अधिकांश पत्रिकाओं, प्रकाशन समूहों, साहित्यिक संस्थाओं, सम्मानों, पुरस्कारों आदि पर अपना एकाधिकार कर रखा है। इससे बाल साहित्य का बहुत अहित हुआ है तथा इसके विकास में बाधा आयी है। फिर भी हिन्दी बाल साहित्यकारों का एक बहुत बड़ा वर्ग बाल साहित्य का सृजन कर रहा है और इसे आगे बढ़ाने का सफल प्रयास कर रहा है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि अब इसे बी.ए. और एम.ए. के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित किया जाने लगा है तथा इस पर पी.एच.डी. स्तरीय शोध बड़ी संख्या में आरम्भ हो गए हैं।

डॉ. विकास दवे : प्रौढ़ साहित्य और बाल साहित्य में क्या अन्तर है? क्या कारण है कि जिन प्रौढ़ साहित्यकारों ने बाल साहित्य लिखा अथवा लिखने का प्रयास किया, उनमें से अधिकांश को सफलता नहीं मिली अथवा आंशिक सफलता ही मिली?

श्री शुक्ल : प्रौढ़ साहित्य और बाल साहित्य में मुख्य अन्तर रचना प्रक्रिया का है। रचना प्रक्रिया का तात्पर्य साहित्यकार की उस मानसिकता से है, जिसमें वह अपना साहित्य सृजन करता है। जिस मानसिकता से प्रौढ़ लेखन होता है, उस मानसिकता से बाल साहित्य सृजन किया ही नहीं जा सकता है, प्रौढ़ साहित्यकार अपने प्रौढ़ साहित्य में विभिन्न प्रकार के भाषा और शैली सम्बन्धी नये प्रयोग, सांकेतिकता आदि की अभिव्यक्ति करता है। इसके साथ ही प्रौढ़ साहित्य के विषय भी बाल साहित्य से भिन्न होते हैं।

बाल साहित्य में सरलता, सहजता, सुगमता, बाल रुचि के विषयों और घटनाओं की अभिव्यक्ति होती है। इसमें चोरी, बेईमानी, वेश्यावृत्ति, घूसखोरी, शराबखोरी, गुण्डागर्दी, लूटपाट,

डकैती, स्मगलिंग जैसे विषयों पर नहीं लिखा जा सकता। इसी तरह शृंगार रस इसमें वर्जित होता है। यही कारण है कि निराला और नागार्जुन जैसे प्रौढ़ साहित्यकारों ने बाल साहित्य लिखने का प्रयास किया, किन्तु उन्हें सफलता नहीं। हाँ, महिला प्रौढ़ साहित्यकारों को बाल साहित्य सृजन में पर्याप्त सफलता मिली है। महादेवी वर्मा और सुभद्रा कुमारी चौहान इसकी सर्वोत्तम उदाहरण हैं।

डॉ. विकास दवे : आपके अनुसार बाल साहित्य को किस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है? इसकी विशेषताओं और महत्त्व पर भी प्रकाश डालिए।

श्री शुक्ल : वास्तव में बाल साहित्य के अन्तर्गत शिशु साहित्य, बाल साहित्य और किशोर साहित्य तीनों आते हैं। इन तीनों वर्गों में आयु का अन्तर होता है। इसलिए बाल साहित्य को परिभाषित करना आसान कार्य नहीं है। मेरे विचार से बाल साहित्य को ऐसे साहित्य के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसके केन्द्र में बाल अथवा बाल-रुचि का विषय हो।

बाल साहित्य में विषय के साथ ही भाषा पर भी ध्यान देना आवश्यक होता है। बाल साहित्य की भाषा अत्यन्त सरल और सहज होना चाहिए। इसमें छोटे-छोटे ऐसे शब्दों का उपयोग करना चाहिए जिनसे बच्चे परिचित हों और जिनका वे सरलता से उच्चारण कर सकते हों। बाल साहित्य में वाक्य भी छोटे होने चाहिए तथा रचना का आकार चाहे वह कहानी हो अथवा कविता, भी छोटा होना चाहिए। शिशुगीत तो केवल चार पंक्तियों वाले ही सर्वोत्तम माने जाते हैं। विषय रोचक होने पर इनकी अधिकतम संख्या सोलह तक हो सकती है। बात शिशुगीत की निकल आयी हो तो मैं यह कहना चाहूँगा कि छोटा-सा शिशुगीत हो अथवा लम्बी-सी बाल कविता अथवा किशोर कविता इन सभी में गेयता का गुण होना चाहिए। यह तभी सम्भव है जब कविता छन्दबद्ध हो। बाल कविता छन्दमुक्त नहीं होनी चाहिए। नामवर सिंह जैसे आलोचक ने भी यह स्पष्ट कहा है कि छन्द तोड़कर लिखी गई कविताओं से बाल साहित्य का बहुत नुकसान हुआ है। बाल साहित्य की विशेषताओं और महत्त्व के विषय में कुछ कहने के पहले मैं इसके तत्वों के विषय में कुछ कहना चाहता हूँ।

बाल साहित्य का प्राणतत्व मनोरंजन है। बाल साहित्य में यदि मनोरंजन नहीं हो तो बच्चे इस पर ध्यान नहीं नहीं देंगे। कुछ बाल साहित्यकार इससे सहमत नहीं हैं। उनका मत है कि मनोरंजन बाल साहित्य का उद्देश्य नहीं हो सकता बल्कि बाल साहित्य का उद्देश्य अथवा प्रमुख तत्व बच्चों का नैतिक विकास होना चाहिए। किन्तु बाल मनोवैज्ञानिकों का मत है कि बच्चे प्रत्यक्ष नैतिक शिक्षा पसन्द नहीं करते। उन्हें जो काम करने से रोका जाय वहीं काम करते हैं। इसलिए बच्चों को नैतिक शिक्षा, मनोरंजन की चाशनी में लपेटकर अप्रत्यक्ष रूप से देना चाहिए। इसी प्रकार बाल साहित्य के कुछ अन्य पक्षों पर ध्यान देने के बाद इसकी निम्न विशेषताएँ हमारे सामने आती है-

1. स्वस्थ बाल मनोरंजन
2. नैतिक विकास
3. ज्ञानवर्धन
4. देशभक्ति की भावना का विकास
5. संस्कृति का ज्ञान

6. विश्वबंधुत्व की भावना का विकास
7. वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास

उपरोक्त बिन्दुओं को बाल साहित्य के महत्त्व के रूप में भी समझा जा सकता है। बाल साहित्य के महत्त्व और इसकी उपयोगिता के बारे में यह कहा जा सकता है कि यह बच्चों को पारस्परिक सम्बन्धों, समाज और जीवन मूल्यों के प्रति सचेत करता है, उनमें कल्पना शक्ति का विकास करता है। इससे वे अपने कल्पना लोक में वह सब प्राप्त कर लेते हैं, जिनका उनके जीवन में अभाव होता है। बच्चों की कल्पना शक्ति उन्हें अपना उद्देश्य निर्धारित करने और एक नेक इन्सान बनने में सहयोग करती है, बच्चों को उचित-अनुचित की जानकारी देती है आदि। यही कारण है कि सफल बाल साहित्यकार सर्वप्रथम बाल मनोविज्ञान का सैद्धान्तिक और व्यवहारिक अध्ययन करते हैं, बच्चों के साथ निकटता स्थापित करते हैं, बच्चों के आसपास की वस्तुओं, घटनाओं प्रकृति आदि को अपने लेखन का विषय बनाते हैं। इसके साथ ही वर्तमान बाल साहित्यकार शिकार, पशु-पक्षियों को पालने, इन्हें सताने तथा नकारात्मक और विध्वंसात्मक मानसिकता वाले विषयों से बचने का प्रयास करते हैं। आइन्सटीन ने भी कहा है कि जानकारियाँ एकत्रित करने से मानसिक विकास नहीं होता। मस्तिष्क को प्रशिक्षण देने का काम रुटीनी कवायद नहीं हो सकती। यह कल्पनाशीलता, सर्जनात्मकता और सम्प्रक्तता की माँग करता है। अर्थात् बच्चों में ठूँस-ठूँस कर ज्ञान भरने के स्थान पर उनमें ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न करना बाल साहित्य का उद्देश्य होना चाहिए।

डॉ. विकास दवे : अब आप अपने बाल साहित्य के विषय में बताइए। आपने कौन-कौन सी बाल साहित्य की विधाओं का सृजन किया है और आपका बाल साहित्य सृजन का उद्देश्य क्या है?

श्री शुक्ल : मैंने बाल साहित्य लिखना कब और क्यों आरम्भ किया। इस सम्बन्ध में आपसे पहले चर्चा हो चुकी है। रही विधाओं की बात तो मैंने बाल साहित्य का अनेक विधाओं में सृजन किया है। मैंने बाल कविता, बाल कहानी, बाल नाटक, बाल उपन्यास, बाल धारावाहिक, बालोपयोगी आलेख आदि बड़ी संख्या में लिखे हैं। सूचनात्मक बाल साहित्य में मेरी विशेष रुचि रही है और इस पर मेरी सौ से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

मैंने बाल साहित्य दो उद्देश्यों को लेकर लिखा है। पहला-रोचक और विलक्षण जानकारियाँ बच्चों को देकर उनका ज्ञानवर्धन करना तथा उनमें ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न करना। दूसरा-भारतीय जीवन मूल्यों को बच्चों तक पहुँचाकर उन्हें उचित-अनुचित का बोध कराना तथा एक जागरूक भारतीय बनाना। इस सम्बन्ध में मेरा विश्वास है कि हम अपनी परम्पराओं का पालन करते हुए भी आधुनिक बन सकते हैं।

डॉ. विकास दवे : आपने अभी-अभी बालधारावाहिक और सूचनात्मक बाल साहित्य की बात की है। कृपया इनके विषय में संक्षेप में प्रकाश डालिए।

श्री शुक्ल : मैंने इन दोनों पर अपनी पुस्तक 'हिन्दी बाल साहित्य का सैद्धान्तिक विवेचन में विस्तार से चर्चा की है। संक्षेप में इतना कहा जा सकता है कि बाल धारावाहिक उपन्यास और कहानी के बीच की विधा है। इसकी प्रत्येक कड़ी अपने आगे और पीछे की कड़ियों से सम्बद्ध भी

होती है और स्वतंत्र भी। इसके साथ ही इसकी प्रत्येक कड़ी में नायक एक ही रहता है, शेष पात्र बदलते रहते हैं। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कभी-कभी पात्रों की पुनरावृत्ति हो जाती है।

बाल साहित्य हो अथवा सामान्य साहित्य, दोनों में कल्पना और यथार्थ होता है। यथार्थ प्रधान साहित्य ही सूचनात्मक साहित्य है। कल्पनाप्रधान साहित्य कभी-कभी भ्रामक धारणाओं को जन्म दे देता है। उदाहरण के लिए कोयल कुहू-कुहू करती है, जबकि कोयल कुहू-कुहू करता है। अर्थात् यह मादक आवाज नर कोयल की होती है। इसी प्रकार 'नारी की झाईं पड़े अंधो होत भुजंग।' यह एक अवैज्ञानिक तथ्य है। सूचनात्मक बाल साहित्य इस प्रकार के भ्रामक तथ्यों का खण्डन करता है तथा बच्चों को नई-नई एवं वास्तविक तथ्यों से युक्त जानकारियाँ उपलब्ध कराता है।

डॉ. विकास दवे : आपने प्रौढ़ साहित्य और बाल साहित्य की अनेक विधाओं पर लिखा है, किसी एक विधा पर क्यों नहीं?

श्री शुक्ल : ऐसा जयशंकर 'प्रसाद' सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', राष्ट्रबन्धु आदि अनेक साहित्यकारों ने किया है। मेरा मानना है कि साहित्यकार एक से अधिक विधाओं पर लेखन अपनी रुचि के कारण करते हैं। कुछ साहित्यकारों की केवल एक ही विधा में रुचि होती है। ऐसे साहित्यकार केवल एक ही विधा-कहानी, कविता, नाटक, निबन्ध अथवा उपन्यास लिखते हैं। इसके विपरीत कुछ साहित्यकार एक साथ अनेक विधाओं में लिखते हैं।

डॉ. विकास दवे : आप सन 1986 अथवा इसके पहले से बाल साहित्य लिख रहे हैं। अब ऐसा और क्या शेष है जो आप बच्चों को देना चाहेंगे?

श्री शुक्ल : बहुत कुछ विकास जी, बहुत कुछ। मेरे विचार से साहित्यकार के लिए एक जिंदगी बहुत कम होती है। जैसे-जैसे साहित्यकार और उसके साहित्य में परिपक्वता आती है, उसके भीतर नये-नये थॉट्स और आइडियाज जन्म लेते हैं, जिन्हें वह कागज पर उतारना चाहता है। यदि साहित्यकार शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ है तो ये थॉट्स और आइडियाज अधिक आते हैं। इसलिए उसे यह जीवन छोटा नजर आने लगता है।

अभी मैं बच्चों को बहुत कुछ देना चाहता हूँ। कुछ समय पूर्व मैंने बाल विमर्श की बीस कहानियाँ तैयार की हैं। यह पाण्डुलिपि बाल विमर्श की कहानियाँ शीर्षक से प्रकाशनार्थ भेज दी है, इस समय जीवन मूल्यों पर एक पुस्तक 'बाल साहित्य, व्यक्तित्व विकास और जीवन मूल्य' तैयार कर रहा हूँ। यह पुस्तक दिसम्बर 2020 के अन्त तक तैयार हो जाएगी। इसके बाद समय मिला तो 'बाल विमर्श का सैद्धान्तिक विवेचन तैयार करने की योजना है और अन्त में आत्मकथा।

डॉ. विकास दवे : आपके लेखन को देखते हुए ऐसा लगता है कि आपने अध्ययन भी बहुत किया। वैश्विक बाल साहित्यकारों की रचनाएँ भी आपने अवश्य पढ़ी होंगी। आप किस साहित्यकार से सर्वाधिक प्रभावित हैं? और क्यों?

श्री शुक्ल : आर.एल. स्टीवेंशन। मैं राबर्ट एल. स्टीवेशन से बहुत प्रभावित हूँ। स्टीवेंशन ने जो भी बाल साहित्य लिखा है उसमें बाल मनोरंजन की प्रधानता है। इसके साथ ही भाषा भी बड़ी सरल और सहज है। इनकी अधिकांश बाल कविताओं में वर्णनात्मक शैली देखने को मिलती है, जो

बच्चों के सामने बड़े रोचक और सजीव चित्र उपस्थित करने में सक्षम है।

डॉ. विकास दवे : आपकी सबसे पसंदीदा रचना कौन-सी है? यह रचना आपको क्यों सर्वाधिक पसन्द है?

श्री शुक्ल : 'सूरज पाना है।' इसी शीर्षक से मेरी एक बाल काव्यकृति 2012 में प्रकाशित हुई थी। यह एक मोटीवेशनल कविता है, जिसमें अंकुर के माध्यम से बच्चों को एक संदेश दिया गया है। यह कविता 'संत गाडगे बाबा अमरावती विश्वविद्यालय के बी.ए. द्वितीय वर्ष के पाठ्यक्रम में है। इसके साथ ही इसे कक्षा 7 से लेकर कक्षा 12 तक की अनेक पाठ्य पुस्तकों में सम्मिलित किया गया है-

मैं नन्हा-सा अंकुर मुझको सूरज पाना है।
आँधी, पानी तेज हवाएँ, शीत लहर तूफानी।
जाना मुझको दूर बहुत है, राह बड़ी अनजानी।
चारों तरफ बवंडर फिर भी, जड़ें जमाना है। सूरज...

फूल हमेशा कभी खिले बस, एक बार खिलता है।
यह जीवन ऐसा जीवन जो, एक बार मिलता है।
इस छोटे से जीवन में, कुछ कर दिखलाना है। सूरज...
मेरे जैसे और बहुत से, अंकुर जग में होंगे।
अंधकार से घबराये वे, सहमे-सहमे होंगे।
इनके भीतर कुछ करने की, अलख जगाना है। सूरज...

धरती हरी-भरी होगी जब, अंकुर महकेंगे।
इनकी मन में रहने वाले, पक्षी चहकेंगे।
मैंने ठान लिया है सारा, जग महकाना है। सूरज...

मैं नन्हा सा अंकुर मुझको, सूरज पाना है।।

डॉ. विकास दवे : वाह! वास्तव में बड़ी प्रेरणादायक बाल कविता है। आपको इस प्रकार के साहित्य सृजना की प्रेरणा कहाँ से प्राप्त होती है?

श्री शुक्ल : परिवार और समाज से। इसके साथ ही नये-नये थाट्स और आइडियाज आते रहते हैं। मेरे साहित्य सृजन में हमेशा श्रीमती शुक्ला, बेटे अभिनंदन और बेटी अंशु का बहुत बड़ा योगदान रहा है। ये तीनों मेरी रचनाओं के पहले श्रोता और समीक्षक रहे हैं। मैंने लगभग चौदह हजार पृष्ठ लिखे है। इनमें से तेरह हजार पृष्ठ श्रीमती जी की राइटिंग में हैं। मेरी हैन्ड राइटिंग बहुत खराब है। कभी-कभी तो मैं अपना लिखा हुआ खुद नहीं पढ़ पाता हूँ। श्रीमती जी की हैन्ड राइटिंग बहुत अच्छी है। इससे मुझे अपने सृजन कार्य में सहयोग के साथ प्रोत्साहन भी मिला।

डॉ. विकास दवे : विश्व बाल साहित्य के परिदृश्य में आप भारतीय बाल साहित्य को

कहाँ पर देखते हैं? विदेशी बाल साहित्य के समान भारतीय बाल साहित्य समृद्ध क्यों नहीं है?

श्री शुक्ल : मैं ऐसा नहीं मानता। भारत के संस्कृत बाल साहित्य को देश में ही नहीं विदेशों में भी सर्वश्रेष्ठ माना गया है। गीता जैसा कालजयी ग्रन्थ विश्व की किसी भाषा में नहीं है। यदि वर्तमान की बात की जाय तो बंगला साहित्य विश्व स्तरीय है। इसे भी सब स्वीकार करते हैं। हिन्दी में 'राम चरित मानस' का कोई जवाब नहीं है। यह विश्व स्तरीय ग्रंथ है।

अब आइए, वर्तमान हिन्दी बाल साहित्य की बात की जाय। हिन्दी बाल साहित्य को सबसे बड़ा नुकसान प्रगतिशील और जनवादी विचारधारा के लेखकों ने पहुँचाया है। ये बाल साहित्य को साहित्य मानते ही नहीं और इसकी उपेक्षा करते हैं। शायद इसलिए क्योंकि बाल साहित्य भारतीय जीवन मूल्यों की बात करता है। मैंने देखा है कि हिन्दी बाल साहित्य के पी.एच.डी. के विषय केवल इसलिए रिजेक्ट हो जाते हैं क्योंकि वे बाल साहित्य के होते हैं।

अब यह स्थिति बदल रही है। धीरे-धीरे प्रौढ़ साहित्यकार भी बाल साहित्य के महत्त्व को समझने लगे हैं और इसे प्रोत्साहन दे रहे हैं। मेरा विश्वास है कि शीघ्र ही प्रौढ़ साहित्यकार बाल साहित्य के महत्त्व और इसकी उपयोगिता को समझने लगेंगे और इसकी प्रगति में सहयोग करेंगे।

डॉ. विकास दवे : बाल साहित्य के विकास के लिए कौन-कौन से कदम उठाने आवश्यक है? तथा इसके लिए क्या प्रयास किये जा रहे हैं?

श्री शुक्ल : विकास जी! यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। बच्चे राष्ट्र के भावी नागरिक होते हैं। ये देश के भाग्य विधाता हैं। बाल साहित्य का सीधा सम्बन्ध बच्चों से होता है। इसलिए सभी का यह दायित्व बनता है कि बाल साहित्य के विकास के प्रयस करें।

मेरे विचार से बाल साहित्य के विकास के लिए ये प्रयास किये जाने चाहिए-

1. प्रत्येक राज्य में बाल साहित्य अकादमी स्थापित की जानी चाहिए। राजस्थान में राजस्थान बाल साहित्य अकादमी की स्थापना की जा चुकी है इसका अनुसरण भारत के अन्य राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों को करना चाहिए।

2. यह आश्चर्य का विषय है कि कक्षा 12 तक बाल साहित्य पढ़ाया जाता है। इसके बाद बी.ए. और एम.ए. में यह देखने को नहीं मिलता, जबकि इस पर एम.फिल. और पी.एच.डी. होती है। मेरा सुझाव है कि स्नातक और परास्नातक कथाओं में बाल साहित्य को अनिवार्य विषय के रूप में रखा जाना चाहिए। आपको यह जानकर खुशी होगी कि संत गाडगे बाबा अमरावती विश्वविद्यालय, अमरावती में एम.ए. (फाइनल) में 'बाल विमर्श' के रूप में इसे सम्मिलित कर लिया गया है। इसी प्रकार स्नातक और परास्नातक कक्षाओं में स्फुट रूप से बाल कविताओं और बाल कहानियों को स्थान दिया गया है। मेरी बाल कविता 'सूरज पाना है' को संत गाडगे बाबा अमरावती विश्वविद्यालय में बी.ए. (अन्तिम वर्ष) अनिवार्य हिन्दी के पाठ्यक्रम में स्थान प्राप्त हुआ है।

3. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने हिन्दी के सभी शोध कर्ताओं के समान बाल साहित्य के शोधकर्ताओं के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा स्वीकृत शोध पत्रिकाओं में कम से कम दो शोध पत्रिकाओं में शोध आलेखों का प्रकाशन और दो शोध संगोष्ठियों में सहभागिता प्रमाण पत्र

अनिवार्य कर दिए हैं। शोध पत्रिकाओं में तो किसी तरह शोध आलेखो का प्रकाशन हो जाता है, किन्तु बाल साहित्य पर केन्द्रित शोध संगोष्ठियों का अभाव-सा है। इस अभाव को विश्वविद्यालय, महाविद्यालय तथा राज्यों की साहित्य अकादमियों को दूर करना चाहिए।

4. बाल साहित्य की पत्रिकाओं में तेजी से कमी आ रही है। नंदन और नन्हें सम्राट जैसे पत्रिकाएँ भी बन्द हो गईं हैं। इसलिए सभी राज्य सरकारों को कम से कम एक बाल पत्रिका का प्रकाशन करना चाहिए। उत्तर प्रदेश शासन की बाल पत्रिका 'बालवाणी' इस दिशा में पहले स्थान पर है।

विकास जी बाल साहित्य के विकास के लिए सुझाव तो बहुत से हैं, किन्तु यदि ये चार काम हो जाएँ तो बहुत बड़ा परिवर्तन आ जाएगा।

डॉ. विकास दवे : शुक्ल जी! आपने अपना अमूल्य समय दिया इसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।

श्री शुक्ल : धन्यवाद।

सम्पर्क : भोपाल (म.प्र.)
मो. 9926856086

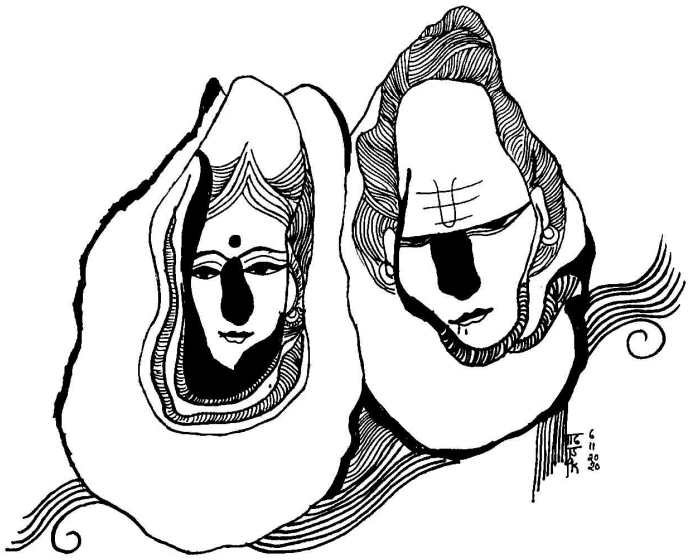

डॉ. दिनेश पाठक 'शशि'

ब्रज के हिंडोले और घटाएँ

कश्मीर से कन्याकुमारी तक फैले विशाल, अनूठे, अनुपम और अपूर्व भारत देश में समय-समय पर छः ऋतुएँ अँगड़ाई लेती हैं-शीत, शिशिर, हेमंत, बसंत, ग्रीष्म और वर्षा। भारत देश के विभिन्न अंचलों की लोक-संस्कृति के मूल तत्व यद्यपि एक हैं तथापि हर अंचल की संस्कृति की कुछ विशेषताएँ होती हैं। ब्रज मण्डल के लोक साहित्य में लोक जीवन की सहज, सरल एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति विद्यमान है। लोक जीवन की कोमलता, निर्मलता एवं सरलता ब्रज के लोक गीतों में ही प्रतिबिंबित हो जाती है।

छहों ऋतुओं में वर्षा ऋतु सर्वाधिक मनोरम, मोहक तथा मुग्धकारी ऋतु है। ग्रीष्म कालीन उमस भरी तपन के पश्चात प्रत्येक नर-नारी, बाल-वृद्ध, वर्षा ऋतु के आगमन की प्रतीक्षा करते हैं। आषाढ़ मास के बादलों की घटा देख कर ग्राम व नगर की युवतियाँ मन भावन सावन के आगमन का आभास लगा लेती हैं।

उमड़ती-घुमड़ती घटाएँ, कारे-कजरारे मेघ और रिमझिम फुहारों के सलोने-सुहाने माह हैं सावन-भादों। भारतीय ऋतु परम्परा में सावन-भादों की ऋतु, वर्षा ऋतु का एक विशिष्ट स्थान है। वसंत ऋतुराज है तो वर्षा है ऋतुओं की साम्राज्ञी। वर्षा के अमृत-बिन्दु ग्रीष्म के प्रचण्ड ताप से दग्ध धरती को शीतलता प्रदान करते हैं। धरती हरिताभ अंकुरों से लहलहा उठती है और धन-धान्य के रूप में वर्षा का वैभव विहँसने लगता है।

सावन वैसे तो भारत के प्रत्येक भाग को उल्लसित करता है परन्तु ब्रज क्षेत्र में सावन की छटा देखते ही बनती है। आकाश में छाये हुए काले-काले उमड़ते-घुमड़ते बादलों और चारों ओर फैली हुई हरियाली को देखकर युवतियों का मन भाव-विभोर हो उठता है। उमड़ती घटाओं को देखकर संयोगिनी एवं वियोगिनी दोनों की ही विचित्र दशा हो जाती है।

सावन के आते ही बाग-बगीचों में, मोहल्ला-पड़ोस में तथा नीम और आम के वृक्षों की डाली पर झूले डाले जाते हैं। सन की बटी हुई मजबूत रस्सी को वृक्ष की डाली पर डाल कर उसके दूसरे सिरे पर मजबूत गाँठ लगाकर उसके बीच में लकड़ी की एक पटली को फँसा कर झूला बनाया जाता है जिस पर बैठ कर स्त्रियाँ गीत गाते हुए झूलती हैं। डाली व पटली की मध्य दूरी में एक अन्य लम्बी रस्सी के दो सिरे बनाते हुए बाँध दिया जाता है। उन दोनों सिरों को दो अलग-अलग दिशाओं में खड़े युवतियों के भाई

या सहेलियाँ पकड़कर झूला झूलने वाली को लम्बे-लम्बे झोंटा देते हैं। झूलती हुई नारियों के मुख से मल्हार, कजरी और प्रकृति के मनोहारी गीत मधुर वाणी में नि:सृत होने लगते हैं-

सावन आयौ सुघड़ सुहावनों जी
ए जी कोई छाई है अजब बहार।
सखियाँ मिल-जुल झूला झूलतीं जी।

गीत और मल्हार गाने वालीं, गीतों में 'ए जी कोई', 'अरी भैना मेरी' और 'हरे रामा' जोड़कर गीतों को सरस और सुमधुर बना देती हैं।

झुलना को झूलणा या तीज भी कहते हैं। ब्रज क्षेत्र में तथा कुरु जनपद में प्रचलित लोक गीतों में झूलना का विशिष्ट स्थान है। जिस प्रकार पूर्वी हिन्दी प्रदेश में सावन के महीने में ''कजली'' गाई जाती है उसी प्रकार पश्चिमी प्रदेश में झुलना या झूलना गाते हैं। ये गीत बहुधा कथापरक होते हैं और इनमें लोक मानस की कल्पना शक्ति तथा लोक जीवन के विविध पहलुओं के दर्शन होते हैं।

झूलना नामक एक छन्द भी होता है जिसके प्रत्येक चरण में 7-7-7-5 के विराम से 26 मात्राएँ और अन्त में गुरु-लघु होते हैं। (हि.सा.कोष, भा-1 पृष्ठ-264)

श्रावण मास के आते ही झमाझम वर्षा होने लगती है। बादल आते हैं, घुमड़ते हैं, गरजते हैं और खूब बरसते हैं। कड़क के साथ बिजली के सर्प भी लपलपाते हैं। प्यासी धरती जल पीकर तृप्त होने लगती है। पुरवइया बयार शरीर और मन में सिहरन पैदा कर देती है। मोर नाचने लगते हैं फिर भला जन-मानस का मन-मयूर क्यों न नाचे। वह भी थिरकने लगता है। गीत गुनगुनाने लगता है। बेटियाँ, बहुएँ और वृद्धाएँ भी मँहदी-महावर लगा कर, शृंगार करके, पेड़ों की हिलती डालियों के आमंत्रण पर झूला झूलकर समवेत स्वर में गीत गाने लगती हैं। कोई गीत विरहणी नायिका की वेदना के स्वर में गाया जाता है तो कोई किसी बहन की भाई से मिलने की तड़प में।

पहले जमाने में सावन के महीने में बेटी ससुराल से मायके आती थी और इसी बहाने वह अपने साथ की सभी सहेलियों से मिल लेती थी। रस-रंग, ठिठोली कर लेती थी और सुख-दुख की बातें कर लिया करती थी। किसी-किसी के भाग्य में यह सुख भी नहीं होता था। उसके सास-ससुर अपनी बहू को उसके मायके न भेज कर उससे कड़ी मेहनत करवाते थे। बहू को तरसाते थे। इस प्रकार जो अपने मायके में आ जाती वे अपने पति के वियोग में तड़पतीं और जो ससुराल में होतीं उन्हें अपने माँ-बाप, भाई की याद सताती। जिनके भाई सावन में अपनी बहन को बुलाने के लिए नहीं पहुँच पाते उनकी बहनें याद कर-करके गाने लगतीं-

सावन सूनौ भैना मेरी लगि रहौ जी,
ए जी कोई नाँय आयौ मैया जायौ वीर। सावन सूनौ...
कौन कूँ राधूँ धौरी-धौरी सेंमरी जी,
ए जी कोई कौन कूँ राँधू गाढ़ी खीर। सावन सूनौ...

सावन के महीने में झूले पर झूलते हुए युवतियाँ इस प्रकार गाते हुए देखी जा सकती हैं-

कच्चे नीम की निबौरी सावन बेगि अइयो रे।

भैया दूरि मति जइयो, भाभी नाँय बुलाबेगी। कच्चे नीम...

बाबा दूरि मति दीजो, हमकूँ कौन बुलाबैगो?

बेटी पास ही तोय देंगे, तोकूँ हम्हीं बुलाबैंगे। कच्चे नीम की...

ऐसी भी नारियाँ होती हैं जो अपने पतियों के वियोग में व्याकुल होती हैं जिनके पति विदेश में अथवा दूर फौज में होते हैं। सावन के महीने में उठते हुए काले-काले बादल, ठण्डी-ठण्डी पुरवइया पवन और नन्हीं-नन्हीं बूँदों की फुहार वियोगिनी को कैसी लगती होगी इसको तो कोई वियोगिनी ही जान सकती है। सावन आते ही वियोगी प्रियतमा का हृदय अपने प्रिय प्रीतम के बिना धड़कने लगता है और जिस प्रकार चातक स्वाति नक्षत्र के जल के अभाव में तड़पता है उसी प्रकार प्रिया अपने प्रिय के परदेश चले जाने से तड़पती है-

आवत सावन कौ महीना, पिया बिनु जामें धड़कतु जीया।

जैसे चातक स्वाति के जल बिन, पिया बिन मेरौ तड़पत जीया।

गाँवों में कच्चे मकान के आगे छप्पर डालते हैं। छप्पर के पुराने हो जाने पर एक नारी अपने पिया को बतलाती हुई और घर बुलाती हुई इस प्रकार गाती है-

छप्पर पुराने सारे पिया है गये जी, लटकन लागे हैं बाँस,

अब घर आय जाओ, गोरी धना के साहिब जी।

सब-सब के पिया तो घर आय गये जी,

कोई हमरे तो बसे हैं विदेश,

अब घर आय जाओ, गोरी धना के साहिब जी।

विवाह के बाद प्रथम सावन के महीने में सोहगी ले जाने का रिवाज होता है जिसमें पति अपनी प्रिय पत्नी के मायके में सोहगी लेकर जाता है। एक नई नवेली दुल्हन अपनी बहन से सोहगी में आने वाले सामान में तीहर, झालर लच्छे, तगड़ी खिलौने, गुड़िया इत्यादि के बारे में झूला झूलते हुए गाकर बता रही है-

अरी बहना तीजन कौ त्यौहार, बालम तो लामें सोहगी

तीहर तौ लामें मोकूँ रेशमी, अरी बहना, जम्पर पै अजब बहार। बालम तौ...

साड़ी तौ लामें असल बनारसी, अरी बहना चूँदर असल किनार। बालम तौ...

झाँझन तौ लामें मोकूँ बाजने री, अरी बहना, लच्छे तौ लामें बलदार। बालम...

सावन मास में अनेक छोटे-बड़े त्यौहार मनाये जाते हैं जिनमें भैया पंचमी, हरियाली तीज या श्रावणी तीज, नाग पंचमी तथा रक्षाबन्धन प्रमुख हैं। रक्षा बन्धन और हरियाली तीज का त्यौहार ब्रज क्षेत्र में महिलाओं के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। इन दोनों त्यौहारों को वे हर्षोल्लास एवं प्रेम के साथ मनाती हैं। रक्षा बन्धन का त्यौहार विशेष रूप से बहन-भाई के राखी बन्धन का त्यौहार तो है ही, साथ ही ब्रज क्षेत्र में इसे बूरा खाने के त्यौहार के रूप में भी मनाया जाता है। इस दिन पति-पत्नी को विदा कराने अपनी ससुराल जाता है। इस अवसर पर सोना, भुजरिया या घूँघा-पूजन किया जाता है। घरों में चावल और सिंमई पकाये जाते हैं। रक्षा बन्धन या सलूनों, भाई-बहन और पति-पत्नी के प्रेम का प्रतीक है।

सावन के झूला गीतों में सबसे रोचक गीत प्रबन्धात्मक हैं। इनमें से किसी में छोटी कथा है

किसी में बड़ी। इनमें से अधिकांश झूला गीत स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध के हैं। उनके सम्बन्ध में किसी न किसी घटना का उल्लेख है। इन गीतात्मक कथाओं में 'चंदना', 'चंद्रावली' और 'निहालदे' अधिक प्रसिद्ध हैं।

ब्रज के उपास्य देव नायक हैं श्रीकृष्ण और उनकी नायिका हैं, महारानी राधिका जी जिनका झूला सुघड़-सुहावना है जिसे लम्बे-लम्बे झोंटा देकर सखियाँ बाग में झुला रही हैं और गीत गा रही हैं-

सुघड़ सुहानो झूला रानी राधिका कौं, ए जी कोई शोभा बरनी न जाय
लम्बे-लम्बे झोटा ले रहीं राधिका जी, ए जी कोई सखियाँ रही हैं झुलाय।

सावन मास के ब्रज लोक गीतों में झूलों-हिंडोलों की चर्चा जीवन तत्व की भाँति घुली-मिली है। जिस प्रकार नारियों के झूलने के लिए बाग-बगीचों में, आम या नीम की डाली पर या घरों में झूला-पटली डाले जाते हैं और उन पर नवयौवनाएँ, युवतियाँ, नारियाँ झूला गीत गाते हुए झूलती हैं उसी प्रकार ब्रज के उपास्य देव नायक-नायिका श्रीकृष्ण-राधा के लिए ब्रज के प्रमुख मंदिरों में हिंडोला पड़ते हैं। विशेषकर बल्लभ कुल सम्प्रदाय के मंदिरों में हिंडोले डाले जाने और कृत्रिम घटाएँ बनाये जाने की परम्परा है।

हिंडोले का रूप, रस्सी-पटरी से बने झूला से थोड़ा अलग प्रकार का होता है। हिंडोले, सोने के, चाँदी के और काठ व काँच के भी बनाये जाते हैं जिनपर सुन्दर नक्काशी के साथ बेल-बूटे, लता-पुष्प,पशु-पक्षी, हाथीदाँत, नगों इत्यादि से भव्य चित्रण किया जाता है जिनमें शिल्पगत सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। हिंडोले की सज्जा में केले के खम्बों का भी प्रयोग किया जाता है। इसकी पृष्ठ भूमि में सावन-भादों की सुहानी ऋतु में राधा-कृष्ण को ब्रज गोपिकाओं द्वारा झूला झुलाने और मल्हारें गाये जाने की गाथाएँ हैं-

अरी बहना राधा रही है झूला झूल, सखियन के संग बाग में।

और-

घर-घर में राधेश्याम ए श्याम, रहे झूल हिंडोला सावन कौ।
सावन की दिव्य छटाओं से, मन मोहक सुघड़ घटाओं से,
ब्रज धाम बनौ सुख धाम।
ब्रज के रंगीन नजारे हैं, घर-घर झूला डारे हैं,
मन मोह रहे छवि अभिराम।

सावन-भादों के महीने में शीतल मंद बयार और पुष्पों की सुरभि से उन्मत्त वातावरण के कारण अंग-प्रत्यंग तरंगित हो उठता है। अमराइयों में झूले पड़ जाते हैं और झूला झूलते हुए जन-जन को असीम आनन्द की अनुभूति होती है। असीम आनन्द की यही अनुभूति भक्त-जनों को अपने आराध्य के साथ तादात्म्य करने पर होती है। आराध्य को प्रमुदित-प्रफुल्लित करने के लिए उनके मन में यह आकांक्षा-अभिलाषा होती है कि उनके आराध्य श्री कृष्ण-राधा भी इस सुहानी ऋतु में यमुना के तट पर, कदम्ब वृक्ष पर डले झूले पर झूलते हुए सुरभित वायु का स्पर्श प्राप्त करें और कोयल की कुहुक तथा पपीहे की पिउ-पिउ का रस प्राप्त करें। इसी भाव से श्री कृष्ण-राधा को झूला झुलाने की कल्पनाएँ सँजोई जाती

हैं और मंदिरों में हिंडोले डालकर उन्हें झुलाया जाता है। मल्हारें गाई जाती हैं। प्रशस्ति गान किया जाता है–

आली री झूलत श्यामा श्याम।

और भी–

कारी–कारी घटा भारी उमड़–घुमड़ आई
छोटी–छोटी बूँदन की परत फुहार है
बोलत चकोर, मोर शोर करें चारों ओर
शीतल सुगन्ध लिए चलत बयार है
देखो कुंज–कुंजन में झूलत हैं श्यामा श्याम
वृन्दावन चंद में हिंडोरा की बहार है।

आराध्य के प्रति भक्ति और श्रद्धा की पराकाष्ठा के रूप में उनके लिए सामान्य से अलग सोने चाँदी के हिंडोले डाले जाते हैं। उन्हें बहुमूल्य रत्नों से सुसज्जित किया जाता है। लता–पताओं और पुष्पों से सुशोभित किया जाता है। सावन–भादों में हिंडोले डालकर राधा–कृष्ण को झुलाने के मूल में संभवत: यही भावना रही है। यही भावलोक मानस के कंठों से गीत–संगीत के रूप में प्रस्फुटित हो उठता है। कल्पनाओं को इस प्रकार साकार किया जाता है–

झूला तो झूलें राधा प्यारी लाड़ली जी
ऐ जी कोई सखियाँ तो गामें हैं मल्हार
संग में झूलें नटवर साँवरे जी
ऐ जी कोई छाई है अजब बहार
वन–उपवन की सीमा अति घनी जी
ऐ जी कोई मोरन की किलकार
शीतल पवन सुगंध बह रही जी कोई
ऐ जी कोई रिमझिम परत फुहार।

ब्रज–भूमि के केन्द्र मथुरा में बल्लभ कुल संप्रदाय के सुप्रसिद्ध मंदिर श्री द्वारिकाधीश में श्रावण के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से सोने–चाँदी के हिंडोले डाल दिए जाते हैं। अब से लगभग अस्सी वर्ष पूर्व निर्मित सोने के हिंडोले का तात्कालिक मूल्य एक लाख छियालीस हजार बासठ रुपये तथा चाँदी के हिंडोले का मूल्य चौदह हजार तीन सौ उनन्चास रुपये था। हिंडोले की पिछवायी ग्यारह हजार तीन सौ छियासठ रुपये की बनी थी। इस पर बनारस के कारीगरों ने जरदोजी की कलात्मक सज्जा की थी।

सोने–चाँदी के अतिरिक्त काठ तथा काँच के हिंडोले भी डाले जाते हैं। वृन्दावन के सुप्रसिद्ध श्री बाँके बिहारी मंदिर में भी पैंसठ वर्ष पूर्व सोने–चाँदी का हिंडोला बनवाया गया था। वर्ष में केवल एक बार हरियाली तीज के दिन बिहारी जी इस हिंडोले में विराजते हैं।

मथुरा के श्री द्वारिकाधीश मंदिर सहित कई अन्य मंदिरों में हिंडोले के साथ कृत्रिम घटाए भी सजाई जाती हैं। भगवान के समक्ष आकाश में उमड़ती–घुमड़ती घटाओं, चंद्रमा, झिलमिलाते तारों, इन्द्रधनुष आदि को धरातल पर उतार दिया जाता है। इनके साथ ही मथुरा, गिरिराज गोवर्धन, कुंज–निकुंज

सरोवर रंग-बिरंगे फव्वारों की सजीव-सजावट से भगवान को रिझाया जाता है।

वस्तुतः हिंडोलों और घटाओं का मूल उद्देश्य भगवान के प्रति भक्ति और उन्हें प्रसन्न करने के लिए अनेकानेक प्रकार से अनुकूल वातावरण का सृजन किया जाना है-

हिंडोला कुंजवन डारौ रे, झूलन आई राधिका प्यारी रे
काहे के चारों खंभ लगबाए री, काहे की लागी डोरिया प्यारी रे
सोने के चारों खम्भ लगवाए री, रेशम की लागे डारिया प्यारी रे।

हिंडोले और घटाओं की एक अन्य विशेषता यह रहती है कि घटा के रंग के अनुरूप ही सज्जा की जाती है। जिस दिन जिस रंग की घटा बनती है उस दिन भगवान का शृंगार, वस्त्र, आभूषण, मंदिर की दीवार तथा खंभों पर लगाए गए कपड़े, फुव्वारों के जल का रंग आदि सभी कुछ एक ही रंग का होता है और यह छटा देखते ही बनती है। नैनाभिराम इन दृश्यों में भक्ति, शृंगार और कला की त्रिवेणी प्रवाहित होती है।

मथुरा के श्री द्वारिकाधीश मंदिर में प्रायः श्रावण कृष्ण त्रयोदशी को केसरिया घटा बनाई जाती है। तो श्रावण कृष्ण अमावस्या को हरी घटा में पान के बीड़े के आकार में मौलश्री के पत्तों से बनाए गए तीन हिंडोले डाले जाते हैं। श्रावण कृष्ण द्वितीया को जामुनी घटा तो श्रावण कृष्ण तृतीया को हरियाली तीज के पर्व पर फल-फूल के हिंडोले डाले जाते हैं। श्रावण कृष्ण चतुर्थी को आसमानी, छठ को गुलाबी, अष्टमी को लाल, दशमी को काली, द्वादशी को लहरिया तथा चतुर्दशी को सफेद घटा बनाई जाती है।

बहुरंगी घटाओं के प्रदर्शन के इस उत्सव में वैसे तो सभी घटाएँ एक से एक मनोरम होती हैं किन्तु सबसे अधिक आकर्षक काली घटा होती है। काली घटा के दर्शनों के लिए जनसमूह उमड़ पड़ता है। काले वस्त्रों से बनाई कारी-कजरारी श्याम घटा के मध्य झिलमिलाते तारे और चन्द्रमा दर्शाया जाता है। फव्वारों की फुहारों से भीगते भक्तजनों को ऐसा लगता है मानो आकाश से हल्की-हल्की फुहारें पड़ रही हों। लहरिया घटा के दिन नौ हिंडोले डाले जाते हैं इन पर कागज, मखमल, केले आदि का काम किया जाता है। हिंडोले और घटाओं के इस अनुष्ठान में संगीत की भी सरस वर्षा होती है। मंदिर के कीर्तनियाँ नित्य प्रति मल्हार, राग हिंडोल झूलनोत्सव के पद आदि का गायन करते हैं-

झूला रे झूलत रानी राधिका, झूलत मचक बढ़ाय। झूला रे...
एक लंग झूले रानी राधिका इक लंग कृष्ण मुरार। झूला रे झूलत...

सावन-भादों के मेले में देश-भर से आने वाले तीर्थ यात्रियों के लिए मंदिरों में डाले जाने वाले हिंडोले और घटाएँ आकर्षण का केन्द्र होती हैं। कला-संस्कृति और अर्थ की दृष्टि से भी पुरातन परंपराओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

लोकगीत ही किसी देश की प्राचीन संस्कृति, सभ्यता एवं विचारशीलता के द्वैतक होते हैं। इन लोकगीतों की वाणी में साहित्यिक काव्य से कहीं अधिक माधुर्य का अनुभव होता है। बड़े-बड़े शहरों से ये लोकगीत लुप्त हो रहे हैं वैसे-वैसे जीवन भी सूना और रिक्त होता जा रहा है और प्रकृति व मनुष्य के मध्य का संपर्क असंतुलित होता जा रहा है।

संपर्क : मथुरा-281006 (उ.प्र.)
मो. 09412727361

शंकर लाल माहेश्वरी

अष्टछाप के कवि

कृष्ण भक्ति परम्परा में अष्टछाप का नाम विशेष उल्लेखनीय है। महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी एवं उनके सुपुत्र श्री विट्ठलनाथ जी द्वारा स्थापित आठ भक्त कवियों का एक समूह था। इन भक्त कवियों ने अपने विभिन्न पदों एवं कीर्तन के द्वारा भगवान श्रीकृष्ण की विशिष्ट लीलाओं का गुणगान किया। अष्टछाप के समस्त कवि वल्लभाचार्य जी के आदर्शों और उनकी उपासना पद्धति के समर्थक और उपासक रहे हैं। इन भक्तिकालीन संत कवियों में सूरदास प्रमुख थे तथा नन्ददास का नाम भी उल्लेखनीय रहा है।

अष्टछाप के कवियों में पुष्टीमार्ग का अनुसरण करने वाले आचार्य वल्लभाचार्य जी के चार प्रमुख संत कवि थे तथा उनके पुत्र श्री विट्ठलनाथ के भी चार शिष्य थे। आठों ही संत कवि ब्रजभूमि के निवासी थे तथा अपने परम इष्टदेव श्रीनाथजी के सम्मुख पद रचना करते और गाते थे। उनके गीत संग्रहों को, अष्टछाप कहा जाता है। अष्टछाप का शाब्दिक अर्थ ''आठ मुद्राएँ'' होती है। इन भक्त कवियों ने ब्रज भाषा में ही पद रचना करते हुए भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं का गुणगान किया है। अष्टछाप के कवियों का विवरण–

कुंभनदास 1448 ई.–1582 ई.
सूरदास 1478 ई.–1580 ई.
कृष्णदास 1495 ई.–1575 ई.
परमानन्ददास 1491 ई.–1583 ई.
गोविंदस्वामी 1505 ई.–1585 ई.
छीतस्वामी 1481 ई.–1585 ई.
नंददास 1533 ई.–1586 ई.
चतुर्भुजदास 1530 ई.–1591ई.

अष्टछाप के कवियों में सूरदास का प्रमुख नाम है। सूर ने भगवान श्री कृष्ण की साख्य भाव तथा वात्सल्य भाव की साधना की है। सूर की प्रमुखता का उल्लेख करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि अष्टछाप के कवियों में सबसे ऊँची वीणा अंधे कवि सूरदास की थी। सूरसागर में

रागानुराग की गंभीर व्याख्या की गई है। इसी ग्रंथ में साख्य व वात्सल्य रस का परिपाक हुआ है। प्रभु की अनन्य भक्ति के लिए पुष्टि मार्ग को प्रधानता से अभिव्यक्त किया गया है। पुष्टि को चार भागों में विभक्त किया गया है। 1. प्रवाह पुष्टि 2. मर्यादा पुष्टि 3. पुष्टि पुष्टि 4. शुद्ध पुष्टि। शुद्ध पुष्टि का प्रतिपादन विशेष रूप से सूर साहित्य में किया गया है। ऐसी मान्यता है कि पुष्टि-पुष्टि द्वारा ही भक्त के हृदय में परम पिता के प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है। महाकवि सूर ने कृष्ण की उपासना का स्वरूप लिखा है-'मेरे जिय ऐसी आज बनी, छाण्डी गुपाल और जो सुमिरौ तो लाजों जननी।।'

नवधा भक्ति की समग्र धाराओं में समन्यव का प्रतिपादन हुआ है। सूर माधुर्य भक्ति के समर्थक रहे हैं। यशोदा और नन्द के वात्सल्य भाव तथा मथुरा गमन के बाद की विरह वेदना का मार्मिक चित्रण सूरसागर में प्रस्तुत हुआ है। संत कवि सूर की वात्सल्स, साख्य एवं कान्ता भाव से बालकृष्ण की उपासना विशेष रही है। नन्द यशोदा एवं गोपियाँ भगवान कृष्ण के मनभावन सौन्दर्य से अभिभूत रहे हैं। बाल लीलाओं के साथ ही कवि सूर ने चीर-हरण, गौरस-लीला, दान-लीला का वर्णन भी विशेष रूप से प्रस्तुत किया है। वस्तुत: कृष्ण काव्य के प्रमुख सूत्रधार कवि सूर और आचार्य वल्लभ रहे हैं। सूरदास जी को पुष्टि मार्ग का जहाज कहा गया है।

अष्टछाप में कृष्ण की लीलाओं का बखान करने वाले आठ संत कवियों का समूह है जिन्होंने कृष्ण भक्ति मार्ग का अनुसरण करते हुए उनकी लीलाओं का विशिष्ट भाव प्रवणता के साथ वर्णन किया है। जो संगीत की विशेष राग रागिनियों में आबद्ध है। 12वीं और 13वीं शताब्दी के लगभग विष्णु स्वामी, निम्बार्काचार्य और माधवाचार्य ने दक्षिण व पूर्वी भू-भाग में इस मार्ग को प्रचारित किया था। विक्रम की 16वीं शताब्दी के बीच महाप्रभु वल्लभाचार्य ने इन आचार्यों की कृष्ण भक्ति से प्रेरित होकर पुष्टि मार्ग चलाया था। उन्होंने श्रीनाथ जी के मंदिर की स्थापना की और कीर्तन सेवा का शुभारम्भ किया। पुष्टिमार्गीय सेवा हेतु क्रियात्मक सेवा के रूप में मंगल, शृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, संध्या आरती तथा शयन की व्यवस्था निरूपित की गई। प्रत्येक सेवा कर्म के लिए विशेष गीतों की रचना करते हुए उन्हें संगीतबद्ध किया गया। महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के चार शिष्य इस सेवा में संलग्न किये गये। जिनके नाम हैं सूरदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास और कृष्णदास। महाप्रभु के देवलोक गमन के बाद उनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ ने श्रीनाथ जी की सेवा व्यवस्था का संचालन किया। इस सेवा को स्थिरता प्रदान करने के लिए चार महाप्रभु के और चार विट्ठलनाथ के शिष्य प्रमुख माने जाते हैं। विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे नन्ददास, चतुर्भुज दास, गोविन्द स्वामी और छीतस्वामी। अष्टछाप के कवियों में आठों नैमेतिक कार्यों के अनुकूल अनुराग, खण्डिता भाव, जागरण, बालवर्णन, वेशभूषा तथा कृष्ण के सखा, गौ चारण, माखनचोरी आदि का भावभीना वर्णन किया है। रासलीला के पदों का विवरण भी मिलता है।

इन आठों भक्त कवियों ने श्रीनाथ जी के मन्दिर की दैनिक लीला में भगवान कृष्ण की सखा के रूप में आराधना की अत: इन्हें अष्ट सखा के नाम से भी जाना जाता है। अष्टछाप की स्थापना 1565 ई. में हुई। अपनी अगाध भक्ति भावना के कारण ये कवि भगवान कृष्ण के सखा स्वरूप भी माने जाते है। परम भगवत् भक्ति के कारण इन्हें भगवदीप भी कहा गया है।

परमानन्द कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे तथा कृष्णदास क्षूद्र वर्ग में आते हैं। कुम्भनदास राजपूत घराने से सम्बद्ध थे। सूरदास को कुछ लोग ब्रह्मभट्ट मानते हैं तो कई भक्त सारस्वत ब्राह्मण होने का दावा करते हैं। गोविन्द दास सनाड्य कुल में पैदा हुए। चौरासी वैष्णवों की वार्ता तथा दो सौ वैष्णवों की वार्ता में अष्टछाप के कवियों का विस्तार से जीवनवृत अंकित है।

श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ ने संवत् 1602 के लगभग अपने पिता वल्लभ के 84 शिष्य और अपने 252 शिष्यों में से अष्टछाप के शिष्यों का चयन किया। पुष्टि मार्ग के नायक संत कवि सूरदास ने श्रृंगार और वात्सल्य रस में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की। उनका प्रसिद्ध ग्रंथ सूरसागर है। नन्ददास ने रास पंचाध्यायी, भ्रमरगीत एवं सिद्धान्त पंचाध्यायी की रचना की। परमानन्द दास ने ''परमानन्द सागर'' ग्रंथ का निर्माण किया। कृष्णदास की रचनाओं में भ्रमर गीत एवं प्रेम तत्व का उल्लेख है। कुम्भनदास ने फुटकर पद रचना की। छीतस्वामी और गोविन्द स्वामी का कोई भी ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। चतुर्भुज दास ने द्वादश यश तथा भक्ति प्रताप ग्रंथों की रचना की।

समस्त अष्टछाप के कवियों का प्राधान्य 84 वर्ष तक रहा। ये सभी संगीतज्ञ एवं कीर्तनकार के रूप में श्रीनाथ जी की पूजा-अर्चना, कीर्तन-वन्दना करते थे। श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ की इन आठों कवियों पर अपनी कृपा तथा आशीर्वाद की छाप रही। इसीलिए अष्टछाप के कवियों की भक्ति साधना का प्रभाव अनवरत बना रहा। सभी कीर्तन तथा संगीत कला में निपुण थे। वे सभी श्रीनाथजी के मंदिरों में विभिन्न राग रागिनियों में अपने पदों को ताल स्वर में निबद्ध कर कीर्तन किया करते थे जो परम्परा आज भी विद्यमान है।

संपर्क : आगूचा, जिला-भीलवाड़ा (राज.)
मो. 94135 81610

राजेन्द्र सिंह गहलोत

लोकजगत की पाठकीय अभिरुचि और साहित्य

लोकजगत के सृजन को संग्रहित, सुरक्षित तथा विश्लेषित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य साहित्य में जितना भी किया जा रहा है वह महत्त्वपूर्ण एवं प्रशंसनीय है। लोकगीतों एवं लोक कथाओं को ही नहीं लोकजगत की परंपराओं, रीति-रिवाजों, जीवन दर्शन को भी लोकप्रेमी साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं, अपनी पुस्तकों में संग्रहित एवं विश्लेषित किया है। लोकगीतों एवं लोक कथाओं का अधिकांश सृजन वाचिक स्वरूप में ही था वे गीतों में गाई जाती थी तो कथाओं मे कही-सुनी जाती थी। लोकप्रेमी साहित्यकारों द्वारा उन्हें लिपिबद्ध कर सुरक्षित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया गया है और लगातार किया जा रहा है। लेकिन लोक जगत में ग्रामों एवं कस्बों में एक अल्प शिक्षित वर्ग है जो कि बाल्यकाल में मात्र प्राथमिक कक्षाओं तक पढ़-लिखकर युवा होते ही खेती किसानी या अन्य जीविकोपार्जन कार्य में लग गया। क्या उस वर्ग में अपनी खेती किसानी या अन्य जीविकोपार्जन के कार्य के बाद बचे हुये समय में पुस्तक अध्ययन के प्रति अभिरुचि है? यदि उसमें पाठकीय अभिरुचि है तो वह क्या पढ़ना पसंद करता है? उसकी अभिरुचि के अनुकूल पुस्तकें किनके द्वारा लिखी एवं प्रकाशित की जा रही हैं? वह जिन पुस्तकों को पढ़ रहा है उनकी विषय वस्तु क्या है तथा साहित्य में क्या उनका कोई स्थान है? आदि पहलुओं पर संभवत: वर्तमान साहित्य में न तो कोई ध्यान दिया गया है और न ही इस बाबत किसी शोध कार्य का ही कोई उल्लेख मिलता है। जबकि लोकजगत की अल्प शिक्षित वर्ग की महिलाओं में अल्प शिक्षा का प्रमुख कारण इस पुरानी मान्यता के तहत रहा कि लड़कियों को घर गृहस्थी का काम करना है अत: अधिक पढ़ाने-लिखाने से क्या फायदा, चिट्ठी-पत्री लिखना आ जाये गीता-रामायण पढ़ कर सुना दे बस इतना ही पर्याप्त है, अधिक पढ़ाने-लिखाने से अधिक पढा-लिखा लड़का भी ढूँढ़ना पड़ेगा आदि। फिर भी परिवेशानुसार उनमें पुस्तक अध्ययन की रुचि थी तथा उनकी रुचि के अनुरूप भी पुस्तकें लिखी जा रही थीं।

यद्यपि लोकजगत के अल्पशिक्षित स्त्री-पुरुषों के बीच पुस्तक अध्ययन की रुचि लोकजगत में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साधनों (टी वी, मोबाइल आदि) के प्रभावी होने तक ही पूरी तरह बरकरार रही। बाद में काफी हद तक प्रभावित हुई लेकिन अभी भी उनकी अभिरुचि के अनुरूप पुस्तकें कस्बों के धार्मिक पुस्तक विक्रेताओं तथा ग्रामों के मेलों एवं हाट बाजारों में विक्रय होती दिखलाई पड़ती हैं। यदि

इस वर्ग के स्त्री एवं पुरुषों के मध्य पढ़ी जाने वाली पुस्तकों का उनकी विषय वस्तु के आधार पर आकलन करें तो पता चलता है कि धार्मिक पुस्तकों रामायण, गीता, आल्हा आदि तथा तंत्र-मंत्र, जादू, ज्योतिष, स्वास्थ्य, चिकित्सा, यौन शिक्षा, पत्र लेखन कला, कुटीर उद्योग प्रशिक्षण आदि से संबंधित पुस्तकों के अलावा कहानी, किस्सा, नाटक-नौटंकी, कविता-गीत, ग़ज़ल, शेर-ओ-शायरी आदि पर केन्द्रित पुस्तकों के अध्ययन के प्रति भी उनमें रुचि है। जबकि लोक जगत की महिलाओं में धार्मिक एवं व्रत त्यौहार की जानकारी देने वाली पुस्तकों तथा घर गृहस्थी स्त्री सुबोधनी जैसी पुस्तकों के अतिरिक्त कविता, भजन, विवाह गीत, किस्सा, कहानी आदि की पुस्तकों के अध्ययन के प्रति भी रुचि है।

लोकजगत के अल्पशिक्षित वर्ग द्वारा पढ़ी जाने वाली पुस्तकों में से हम सिर्फ किस्सा कहानी वाली पुस्तकों पर ही ध्यान केंद्रित करें तो पता चलता है कि उनकी अभिरुचि जादू, तिलस्म, दैत्य-दानव, परी, प्रेम-प्यार इश्क, स्त्री-पुरुष बेवफाई, विचित्र वृत्तान्त हास्य आदि पर ही अधिक केन्द्रित है एवं इसी के अनुरूप इन पुस्तकों के कथानकों का ताना-बाना बुना गया है तथा पात्रों का चयन किया गया है। विचित्र वृत्तान्त कथाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय सिंहासन बत्तीसी, बेताल-पच्चीसी, किस्सा-हातिमताई, किस्सा गुलबकावली, अलीबाबा और चालीस चोर, सिंदबाद की यात्रा, अलाउद्दीन का जादुई चिराग आदि हैं। स्त्री-पुरुष बेवफ़ाई के कथानक वाली पुस्तकों में किस्सा तोता-मैना, राजा भरथरी (भर्तृहरि) रानी पिंगला, किस्सा गुल सनोवर आदि है। जबकि प्रेम सबंधों वाले कथानकों की पुस्तकों में नल दमयंती, राजा ढोलन रानी मारू, किस्सा सारंग सदावृत, किस्सा केशर गुलाब आदि हैं तथा हास्य में अकबर-बीरबल विनोद, लाल बुझक्कड़ एवं चुटकुलों की पुस्तकें हैं। इनके अलावा किस्सा साढ़े तीन यार, लालमन सुग्गा, त्रिया चरित्र, तिलस्मी मैना, चाँद सौदागर की कहानी, सात तिलस्मी परियाँ, हँसता पान बोलती सुपारी, सोने का पेड़, हीरे की खेती, बोलता मुर्दा रोता मसान, चाँदी की राजकुमारी, तिलस्मी गलीचा, पिसाचिनी चन्द्र हास, तिलस्मी तोता आदि पुस्तकों का नाम लिया जा सकता है।

इन पुस्तकों में से कुछ के कथानक अलिफ लैला (अरेबियन नाइट्स) से लिये गये हैं तो कुछ के संस्कृत में लिखे ग्रंथों से जबकि इनमें से बहुत सारी पुस्तकें लोकजगत के ही लेखकों द्वारा लिखी गई हैं। इस तरह की पुस्तकों के लोकजगत के लेखकों में से ठाकुर प्रसाद मिश्रा 'दीवाना', गोरखपुर, रामदेव पांडेय 'पिछउरा', प्रतापगढ़, दुर्गाशंकर त्रिवेदी, बाबू महादेव प्रसाद सिंह नाचाप, जिला आरा, निशिकर आदि का नाम लिया जा सकता है। जबकि इन पुस्तकों के प्रमुख प्रकाशकों में ठाकुर दास एण्ड सन्स कचौड़ी गली, बनारस, श्री लोकनाथ पुस्तकालय कलकत्ता, लाला श्याम लाल हीरालाल मथुरा, बंबई पुस्तकालय इलाहाबाद, भोलानाथ पुस्तकालय कलकत्ता, एन एस शर्मा गौड़ बुक डिपो हाथरस आदि हैं।

अलिफ लैला अरबी भाषा के अल्फ लैला का अपभ्रंश है। अल्फ यानी एक हजार तथा लैला यानी रात यानी एक हजार रातों की कहानियाँ (अरेबियन नाइट्स) तथा यमन के दानी बादशाह हातिमताई की हुश्न बानो के सात प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ने की हैरतअंगेज कहानियाँ पूरे विश्व में लोकप्रिय है। उन पर कई फिल्म एवं टी वी सीरियल बन चुके हैं तथा कई भाषाओं में उनके कथानक पर पुस्तकें लिखी गई हैं फिर भला लोकजगत का यह अल्पशिक्षित वर्ग कैसे उनसे अछूता रह पाता। लोकजगत के कहानीकारों ने इन कृतियों के सरल भाषा में पठनीय संस्करण अध्ययन हेतु उपलब्ध कराये जो उनके मध्य लोकप्रिय हुये।

किस्सा हातिमताई की तरह ही किस्सा गुल बकावली, शाहजादा ताजुलमलूक द्वारा एक ऐसे फूल को लाने की हैरतअंगेज कहानी है जो ईरान के बादशाह जैनुअल मलूका की अंधी आँखों का इलाज था। कहानी में बिल्ली के सिर पर चिराग रख कर जुआ खेलने वाली वेश्या, परी बकावली, परी रूहअफ्जा, देव आदि का जिक्र है तथा चौबीस दास्तानों में कहानी बयाँ की गई है। कहानी की भाषा उर्दू मिश्रित है तथा उसमें शेर, बैत आदि संवादों में प्रयुक्त किये गये हैं। यह पुस्तक भी लोकजगत में लोकप्रिय है।

जबकि लोकजगत में संस्कृत साहित्य से हिन्दी में अनुवादित कर ली गई लोकप्रिय पुस्तकों में प्रमुख बेताल पच्चीसी एवं सिंहासन बत्तीसी हैं। बेताल-पच्चीसी संस्कृत साहित्य में सिंहासन बत्तीसी से पहले लिखी गई थी तथा संस्कृत में उसे वेताल भट्ट ने बेताल पंचविशंतिका नाम से लिखा था। वेताल भट्ट महाराजा विक्रमादित्य के नौ रत्नों में से एक थे। बेताल द्वारा महाराजा विक्रमादित्य को सुनाई गई इन पच्चीस कहानियों के संकलन का अनुवाद कई भाषाओं में किया गया। बेताल पच्चीसी की ही भाँति सिंहासन बत्तीसी भी मूलत: संस्कृत में लिखी गई थी। जिसका उत्तरी संस्करण सिंहासन द्वात्रिंशति तथा दक्षिणी संस्करण विक्रम चरित के नाम से उपलब्ध है, जिसे क्षेमेंद्र मुनि ने लिखा था। इसे द्वात्रिंशत्पुत्तलिका के नाम से भी जाना जाता है। राजा भोज द्वारा टीले की खुदाई में मिले विक्रमादित्य के सिंहासन की बत्तीस पुतलियों द्वारा विक्रमादित्य की शूर वीरता, दान एवं न्याय शीलता की कहानियाँ उन्हें सुनाई जाती हैं तथा 32वीं पुतली रानी रूपमती के निर्देशानुसार राजा भोज सिंहासन पर बैठने का इरादा त्याग कर पुन: सिंहासन को जमीन में गड़वा देते हैं। हिंदी में सिंहासन-बत्तीसी एवं बेताल-पच्चीसी का अनुवाद लल्लूलाल द्वारा किया गया। संभवत: लोकजगत में विक्रय की जाने वाली इन दोनों पुस्तकों की भाषा एवं स्वरूप को सरलीकृत एवं लोकोपयोगी बनाने के प्रयास में लोकजगत के लेखकों द्वारा इनमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन किया गया है लेकिन कथानक मूलत: वही हैं। ये दोनों कृतियाँ लोकजगत में अत्यंत लोकप्रिय होने के साथ ही साहित्य में भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

सिंहासन-बत्तीसी एवं बेताल पच्चीसी की ही भाँति स्त्री पुरुष बेवफ़ाई की कहानियों में किस्सा तोता मैना अत्यंत लोकप्रिय है। इसके मूल लेखक के बतौर पं. रंगीलाल के नाम का उल्लेख मिलता है। यह पुस्तक 8 खंडों में विभक्त है जबकि कुछ प्रकाशकों ने इसे 24 खंडों में भी विभक्त किया है। इसके कथानक में बरसात से बचने हेतु एक तोता उस वृक्ष में आश्रय लेता है जिसमें एक मैना का निवास है। मैना उसके आगमन पर एतराज़ करती है तथा पुरुषों की बेवफाई की बात करते हुये उनकी बेवफाई की कहानियाँ सुनाती है ज़वाब में तोता स्त्रियों की बेवफाई की कहानियाँ सुनाता है। इन कहानियों के पात्रों द्वारा भी कहानियाँ सुनाई जाती हैं, इस भाँति कहानियों का रोचक सफ़र चल पड़ता है। इन कहानियों में पात्रों के संवादों में शेर, रेख्ता, दोहा, सवैया, छप्पय, कवित्त, चौपाई, रागिनी, गिरनारी, ठुमरी, गीत, ग़ज़ल, झुलना सभी का प्रयोग किया गया है। साहित्य में भी गद्य एवं पद्य का मिश्रित प्रयोग पंचू काव्य के तहत किया गया है। इन कहानियों के पात्र हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही सम्प्रदाय के हैं तथा पात्रानुकूल परिवेश तथा भाषा भी कहानियों में प्रस्तुत होती है। कहानियों के अंत में हंस द्वारा यह कह कर समझौता कराया जाता है कि दुनिया में हर स्त्री-पुरुष एक जैसे नहीं होते तथा तोता-मैना का विवाह करवा दिया जाता है।

तोता-मैना की ये कहानियाँ इतनी लोकप्रिय हुईं कि लोकजगत में इनकी पुस्तकें पढ़ी जाने के

साथ ही यू-ट्यूब पर इन कहानियों को गद्य एवं पद्य के मिश्रित स्वरूप में कई लोक गायकों ने प्रस्तुत किया जिनमें से बृजेश शास्त्री का नाम महत्त्वपूर्ण है। लोक जगत में तोता-मैना की कहानियों की लोकप्रियता का यह आलम है कि समद में तोता-मैना की कब्र भी मिलती है जिसे किसने बनवाया पता नहीं चला। वर्तमान साहित्य में स्त्री-विमर्श में कई कहानियाँ पुरुषों की बेवफाई एवं नारी उत्पीड़न की दिखाई पड़ती हैं तो ज़वाब में पुरुष-विमर्श में भी पुरुष शोषण की कहानियाँ दिखलाई पड़ने लग गई हैं जबकि रविंद्र कालिया के संपादन में भारतीय ज्ञानपीठ की पत्रिका नया ज्ञानोदय का सुपर बेवफाई विशेषांक दो खंडों में प्रकाशित हुआ था। लेकिन इन सबके बावजूद वर्तमान साहित्य की किसी भी पत्रिका में आधुनिक परिवेश के स्त्री-पुरुष बेवफ़ाई की तोता-मैना जैसी कहानियाँ सम्मिलित रूप से संभवत: प्रकाशित नहीं हुईं।

जबकि राजा भर्तृहरि रानी पिंगला की कहानी स्त्री बेवफाई में पुरुष के वैराग्य लेने की कहानी है। राजा भर्तृहरि लोकजगत में राजा भरथरी के नाम से जाने जाते हैं तथा बिहार, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ आदि प्रांतों के लोकजगत में राजा भरथरी रानी पिंगला की कहानी, नाटक, नौटंकी आदि प्रांतों की भाषा और बोलियों में पुस्तकाकार में प्रकाशित हो कर लोकप्रिय हुई है। राजा भर्तृहरि राजा विक्रमादित्य के बड़े भाई थे। वे वैराग्य ले कर गुरु गोरखनाथ के शिष्य बने तथा उन्होंने संस्कृत में नीति शतक, श्रृंगार शतक, वैराग्य शतक तथा व्यांकरण पदीय नामक व्याकरण ग्रन्थ लिखे। इन पर केन्द्रित विभिन्न कहानियाँ एवं किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। लोक जगत में प्रचलित एक कहानी के अनुसार राजा भरथरी प्राप्त अमर फल अपनी रानी पिंगला को देते हैं। वह उसे अपने प्रेमी सेना नायक को दे देती है, सेनानायक उसे अपनी प्रेमिका राजनर्तकी को देता है तथा राजनर्तकी उसे राजा को भेंट करती है। इस भाँति अपनी रानी पिंगला की बेवफाई से व्यथित होकर राजा भरथरी अपने छोटे भाई विक्रमादित्य को राज-पाठ सौंप कर वैराग्य ले लेते हैं। इसी भाँति सनोवर के साथ गुल की बेवफ़ाई की आश्चर्यजनक कहानी किस्सा गुल सनोवर है।

लोक जगत के इस अल्पशिक्षित वर्ग में प्रेम कहानियों की जिन पुस्तकों को अधिक पढ़ा जाता है उनमें से कुछ के नाम नल दमयंती, राजा ढोलन रानी मारू, रानी सारंग सदावृज, किस्सा केशर गुलाब आदि की प्रेम कहानियाँ हैं। नल दमयंती की कथा मूलत: महाकाव्य महाभारत में आती हैं जहाँ एक ऋषि द्वारा नल दमयंती के बीच प्रेम, नल द्वारा जुऐ में सब कुछ हार जाने तथा दरबदर भटकने के बाद फिर से उनके अच्छे दिन आने की कथा पांडवों को सुनाई गई थी। नल निषध देश के राजा थे तथा दमयंती विदर्भ देश के राजा भीष्मक की पुत्री थी। निषध देश का बाद में नरवर नाम पड़ा जो कि मध्यप्रदेश में शिवपुरी के समीप है। राजा नल के पुत्र साल्हकुमार जो कि ढोला के नाम से जाने जाते हैं का बालविवाह जांगलू देश (जो कि वर्तमान में बीकानेर के नाम से जाना जाता है) के पंवार राजा पिंगल की पुत्री मारवणी (मारू) से हुआ था बड़े होने पर उसका दूसरा विवाह मालवणी से हुआ। ढोला द्वारा मारवणी को भूल जाना तथा मारवणी का उसके विरह में तड़फते हुते ढोली द्वारा ढोला के पास संदेश भेजना। ढोली से संदेश एवं मारवणी के सौन्दर्य वर्णन को सुन कर ढोला द्वारा जांगलू देश जा कर मारवणी को लाना, राह में साँप का काटना तथा दूसरी पत्नी मालवणी द्वारा अड़चनें डालना आदि की ढोला मारू की प्रेम कहानी राजस्थान

में अत्यंत लोकप्रिय है। ढोला मारू की प्रेम कहानी मूलत: पद्यात्मक स्वरूप में है तथा उसका नाम 'ढोला मारू रा दूहा' है। ढोला मारू रा दूहा के रचयिता कवि कल्लोल हैं जिन्होंने ग्यारहवीं शताब्दी में इसे लिखा था तथा सत्रहवीं शताब्दी में कुशल राम वाचक ने इसमें कुछ चौपाइयाँ और जोड़ कर इसे विस्तार दिया।

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'ढोला मारू रा दूल्हा' को हेमचंद्र तथा बिहारी के दोहों के बीच की कड़ी माना है। लेकिन जब इसी ढोला मारू की प्रेमकथा का पुनर्लेखन उत्तर भारत के लोकजगत के कहानीकारों द्वारा किया जाता है तो उसके स्वरूप में परिवर्तन आ जाता है। वह ढोला मारू की जगह राजा ढोलन रानी मारू की कहानी बन जाती है उसमें नल दमयंती की कहानी के साथ ही ढोला मारू की कहानी जोड़ दी जाती है तथा अलग से भी ढोलन मारू की कहानी लिखी जाती है। कहानी के संवादों में दोहा, चौपाई, गीतों का समावेश हो जाता है तथा कथानक में ढोला द्वारा मारू के सतीत्व परीक्षण हेतु बालू के घड़े को सूत की रस्सी से बाँध कर पानी निकालने की बात की जाती है। मारू के शहर में तमोलिन, कलवारिन तथा मालिन द्वारा ढोला को मोहित करने के असफल प्रयास का प्रसंग आ जाता है। भाषा भी खड़ी बोली एवं भोजपुरी मिश्रित हो जाती है। कुछ पात्रों के नाम भी बदल जाते हैं मसलन मारूवणी के पिता राजा पिंगल का नाम राजा बुद्ध सिंह लिखा गया है। संभवत: यह सब परिवर्तन राजस्थान की लोकप्रिय ढोला मारू की प्रेम कहानी को उत्तर भारत के लोकजगत के परिवेश के अनुकूल बनाने के दृष्टिकोण से उत्तर भारत के लोकजगत के कहानीकारों द्वारा किया गया है तथा इस प्रेम कथा की पुस्तक में वे बतौर लेखक अपना नाम भी दर्ज करते हैं।

रानी सारंगा सदावृज तथा केशर गुलाब प्रेम कहानियों में सारंगा सदावृज की प्रेम कहानी में प्यासे हंस के जोड़े ने एक गड्ढे में स्थित सीमित जल को एक-दूसरे को पिलाने के प्रेम भरे हठ में प्यास से प्राण त्याग दिए। शंकर जी के आशीर्वाद से हर योनि में वे प्रेमी-प्रेमिका बन कर पैदा हुये तथा सातवें जन्म में मानव योनि में उनका मिलन हुआ। सारंगा सदावृज प्रेम कहानी के लोकजगत के नौटंकी रूपांतरण में हास्य प्रसगों का समावेश कर रोचक बनाने के प्रयास में इस प्रेम कहानी में कई परिवर्तन किये गये। जबकि किस्सा केशर गुलाब में राज पुत्र गुलाब को उसकी भाभी ताना देती है कि क्या पानी पिलाने केशर कुँवरी आयेगी तथा उनसे केशर कुँवरी के सौन्दर्य का वर्णन सुन कर राजपुत्र गुलाब केशर कुँवरी को ब्याहने निकल पड़ता है तथा दैत्य के चंगुल से उसे मुक्त कर उससे विवाह करता है। किस्सा साढ़े तीन यार, चार दोस्तों में से तीन दोस्तों के प्रेम तथा काफी संघर्ष के बाद अपनी-अपनी प्रेमिकाओं से विवाह की कहानी है जिसमें दैत्य, परी, जादू , तिलस्म सभी का समावेश है। कहानी के संवादों में दोहा, शेर, ग़ज़ल, चौताला, सोरठा, बैत आदि का प्रयोग किया गया है। चौथे यार बुद्धसेन को इसलिये आधा यार माना गया है क्योंकि न ही वह किसी से प्रेम करता है और न ही विवाह।

लोकजगत के अल्पशिक्षित वर्ग के मध्य पढ़ी जाने वाली इन पुस्तकों की लोकप्रियता का यह आलम रहा है कि इनके कई संस्करण प्रकाशित किये गये तथा लगातार प्रकाशित किये जा रहे हैं। मेरे पास उपलब्ध ऐसी लगभग 70 पुस्तकों में से कुछ के उनके प्रकाशन वर्ष में संस्करण एवं प्रतियों की संख्या निम्नानुसार है - रानी सारंगा का गीत 50 वीं बार प्रकाशित, 5000 प्रतियाँ, किस्सा गुल बकावली 25 वीं बार प्रकाशित, 3000 प्रतियाँ, किस्सा केशर गुलाब 11 वीं बार प्रकाशित, 10000 प्रतियाँ। जबकि

सिंहासन-बत्तीसी, बेताल-पच्चीसी, किस्सा-हातिमताई, नल-दमयंती, ढोलन-मारू आदि के संस्करण एवं प्रतियाँ इनसे भी अधिक प्रकाशित हुये हैं। लोक जगत के इनके पाठकों द्वारा ये पुस्तकें वी पी पी द्वारा भी मँगवाई जाती हैं तथा प्रकाशक एक साथ 8 पुस्तकों का आर्डर देने पर ही पुस्तकें भेजते हैं। इनकी कीमत भी वर्तमान साहित्यिक पुस्तकों की तुलना में काफी कम होती है। वर्तमान में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के प्रभावी होने पर इनकी भी पठनीयता प्रभावित हुई है, लोकप्रियता नहीं। यू-ट्यूब पर इन पुस्तकों मे से कई के कथानक रोचक तरीके से प्रस्तुत किये जा रहे हैं तथा लोकप्रिय हैं। इन पुस्तकों को पढ़ने में कई प्रतिष्ठित साहित्यकारों की किशोरावस्था में रुचि रही, इस संबध में प्रतिष्ठित व्यंग्यकार शरद जोशी ने अपने एक आलेख में जिक्र किया था तथा मनोहर श्याम जोशी ने संभवतः लोकजगत की किस्सा कहानी की पुस्तक किस्सा साढ़े तीन यार के शीर्षक से प्रभावित हो कर अपनी पुस्तक का शीर्षक किस्सा पौने चार यार रखा था।

संपर्क : बुढ़ार, शहडोल (म.प्र.)

जीवन सिंह ठाकुर

सांस्कृतिक मूल्य और हमारी जड़ें

इतिहास की जड़ों को देखने की सर्वाधिक जरूरत है। साथ ही कौमियत को समझने की और भी ज्यादा जरूरत है। तीसरी बात कथित 'धर्मनिरपेक्षता' को खँगालने की भी उतनी ही आवश्यकता है। ये तीन बिंदु हर भारतीय को मथते रहते हैं। निरंतर उसके लिए कहीं न कहीं परेशान होता रहता है। स्वतंत्रता के पूर्व तथा पश्चात् के वातावरण तथा सोच पर विश्लेषणात्मक, समालोचनात्मक दृष्टि से गहराई से विचार करके तमाम विकृतियों को जो 'स्वीकृति' की शक्ल इख्तियार कर चुकी हैं उनसे मोह भंग होना अत्यंत आवश्यक है। थोड़ा विषयांतर करते हुए-ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ कि साहित्य के क्षेत्र में, कथित आधुनिकता के चरम पर बैठे लोगों ने 'साहित्य और इतिहास' के अंत की घोषणाएँ कर रखी हैं। जैसे 'साहित्य और इतिहास' इन्हीं लोगों की घोषणा की प्रतीक्षा कर रहा था कि कब घोषणा हो और 'इतिहास और साहित्य' अपनी मौत खुद मर जायें? सवाल यह उठता है कि इतिहास को समाप्त घोषित करने वाले 'सरपंच' कौन हैं? साहित्य को खत्म मानने वाली शक्तियाँ कौन हैं? इन्हें पहचानना बेहद जरूरी है।

देशी-विदेशी तत्वों को क्या जरूरत पड़ी कि वे घोषणा करें? कारण बेहद स्पष्ट है कि इतिहास जड़ों से जोड़ता है-हमारा दिशा निर्देश करके वर्तमान को सँवारने में मददगार होता है और साहित्य समाज को समझने, उसे महसूस करने, लोक से जोड़ने की शक्ति देता है। ये दो तत्व किसी भी देश को और गहरे मानवीय सरोकारों वाला समाज निर्मित करते हैं। उसे पहचान देते हैं। मान लो कि यह छिन जाये तो हमारे समाज के इस महा खालीपन को किसी भी आयातित चीजों से (विचारों से) आसानी से भरने का मौका मिल जायेगा।

प्रख्यात साहित्यकार और विचारक निर्मल वर्मा ने लिखा था ''धर्म के बारे में हमारी अवधारणा क्या है, जिसके प्रति हम निरपेक्ष होना चाहते हैं, और जब तक हम इस प्रश्न का उत्तर नहीं देते तब तक हमारे समाज में 'सेक्यूलरिज्म' की सारी बहस कोई विशेष अर्थ नहीं रखेगी।'' ('आदि, अन्त और आरम्भ' पृष्ठ 87-ले. निर्मल वर्मा प्रकाशक 'भारतीय ज्ञानपीठ' दिल्ली-वर्ष 2010)

धर्म निरपेक्षता शब्द सेक्यूलरिज्म का अनुवाद नहीं है। 'धर्म' भारत में व्यापक अर्थों वाला गहरी सामाजिकता, उसके मूल्यों के साथ कर्त्तव्य बोध को भी प्रदर्शित करता है। धर्म, ईश्वर की व्याख्या ही

नहीं करता वरन सामाजिकता में नैतिक मूल्यों की रक्षा उसके परिष्कार में भी निहित है। अत: 'रिलीजन' या 'मजहब' के अर्थों में यह कहीं आगे है। सेक्यूलरिज्म का अनुवाद 'धर्म निरपेक्षता' सही नहीं बैठता। क्योंकि समग्र सांस्कृतिक विरासत में 'धर्म-संलग्नता' ने 'निरपेक्षता' में सौहार्द, साहचर्य, मानवीय सरोकार दिया है। हजारों बरसों में भारत ने अपनी जीवन-शैली, सामाजिक जीवन विकसित किया है। इसे विकसित करने में धर्म, कला, साहित्य, गायन, वादन, अध्यात्म, चिंतन, मनन के भाव संसार ने रचा है। भारतीय 'निरपेक्षता' कलागत-विचारगत, मत मतांतर' को खूबसूरत स्वतंत्रता देती है जो निर्माणकारी है, विध्वंसक कतई नहीं। भारत ऐसा क्षेत्र रहा है जो विभिन्नता से सराबोर है। सवाल यह उठता है कि 'भिन्नता' (डायवरसिटी) पर सक्षम सम्राटों, राजाओं, ने सवाल क्यों नहीं खड़े किये? जबकि अक्रमणकारियों तथा अन्य बाहरी विद्वानों ने इसे टुकड़े-टुकड़े माना। सवाल भारतीयता को न समझने का भी है और जानबूझ कर न समझाने का भी है। भारतीय क्षेत्रों या समाज में 'भिन्नता' पृथकताएँ नहीं हैं। पृथकता का अर्थ भिन्नता नहीं है। न अलहदा जैसे शब्दों में इसे नत्थी किया जा सकता है।

एक नारा हमेशा चलता रहता है-'भिन्नता में एकता।' यह नारा कहीं अवचेतन में पृथकता को ध्वनित करता है। पृथकता देखने पर बाध्य करके 'एकता' के प्रयासों के लिए औजार ढूँढ़ने की कोशिश में नज़र आने लगता है। भारतीय संदर्भ में 'भिन्नता' पृथकता कतई नहीं है। यह भारतीय जीवन-शैली चिंतन में जनतंत्री व्यवस्था है, जहाँ अपनी विशिष्टता के साथ व्यापक खुलेपन में सम्यक स्वतंत्रता में भारतीयता का निर्माण करती है। यही 'जनतंत्र' भारत की विभिन्न भाषाओं में है। इसका ठोस प्रमाण विभिन्न भाषाओं में अभिव्यक्त 'भारतीय साहित्य' जिसके स्वर व्यापक रूप से 'भारत' को अभिव्यक्त करते हैं। विभिन्न क्षेत्रों के लोक साहित्य, नागर साहित्य, व्यापक भारतीय चिंतन, चरित नायकों, उच्च जीवन मूल्यों को दृढ़ता से अभिव्यक्त करते हैं। भाषा कोई भी हो उसमें भारत निहित है।

यहाँ हमें एक खास धारणा पर भी सोचना होगा। आम तौर से भारतीय भाषाओं और इसमें रचे गये साहित्य को क्षेत्रीय साहित्य कह दिया जाता है। यह किसने कहा? क्यूँ कहा? इसके पीछे क्या मंशा थी? सवाल के जवाब बड़ी आसानी से मिल जायेंगे। जब इतनी समृद्ध भाषाओं तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों को क्षेत्रीय कहा जाता है तो किसी अनजानी भाषा और वैचारिकी को 'अखिल भारतीय' सिद्ध करने में समय नहीं लगता। हमलावरों ने यही किया। भारत की सभी शिष्टताओं, श्रेष्ठताओं, सहज और नैतिक समाज को दोयम दर्जे का बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। अरबी आक्रमणकारी मुहम्मद-बिन-कासिम से सल्तनत काल तक, फिर मुगलकाल तक 'अखिल भारतीयता' के मायने 'सत्ताधीशों' की राजधानियाँ, उनकी भाषा तथा साहित्य (ब्यौरे) रहे हैं। इस सिलसिले को लड़खड़ाती मुगलिया सत्ता ने सहज ही ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हवाले कर दिया। तमाम आक्रमणकारियों के इतिहास पर 'ब्रिटिश' ने योजनाबद्ध काम करते हुए भाषा, इतिहास, साहित्य, संस्कृति के संदर्भ में विध्वंस करना शुरू किया। 'आर्थिक विनाश' ने यह काम बखूबी किया।

भारत की प्रत्येक भाषा अखिल भारतीय भाषा है क्योंकि उसमें अखिल हिन्दुस्तानियत का दिल

धड़कता है। अखिल बौद्धिकता का मस्तिष्क स्पंदित होता है। इसे व्यापक आँगन संस्कृत और हिन्दी देती है। हिन्दी की इस विशेषता को 'ब्रिटिश प्रभाव से ग्रस्त' बुद्धिजीवी 'हिन्दी साम्राज्यवाद' कह कर नकली सैद्धांतिकी गढ़ते हैं। 'ब्रिटिश साम्राज्यवाद' और उसी तर्ज पर 'हिन्दी साम्राज्यवाद' कहा जा सकता है? हिन्दी थोपी नहीं गई 'हिन्दी स्वीकारी गई' है उसे अपनापा मिला है। भारत में चाहे कोई भी बाहरी या अंदरूनी कर्मी आया हो, उसे निरंतर सशक्त प्रतिरोध का सामना करना ही पड़ा है। बुद्धिजीवियों ने कभी भारतीय 'प्रतिरोध' के राष्ट्रीय, सांस्कृतिक स्वरूप को रेखांकित क्यों नहीं किया? बात स्पष्ट है कि भारतीय प्रतिरोध को समझने का सीधा अर्थ है, साम्राज्यवादी, आक्रमणकारी सैद्धांतिकी का ध्वस्त होना। बुद्धिजीवी चाहेगा कि उसकी भारत विरोधी-कथित थीसिस-को चुनौती मिले? हमारे बुद्धिजीवियों की सबसे बड़ी विशेषता या मजबूरी यह है कि वे देश को समग्रता में नहीं देखते। वे देश, समाज को खण्ड-खण्ड में ही देखते हैं और अंततः उनकी थीसिस का निष्कर्ष 'विभाजन' में विराम करता है। जैसा मैंने पूर्व में ध्यान आकर्षित किया है कि भारत में ऊपरी तौर पर जो भिन्नता दिखाई देती है, वह पृथकताएँ नहीं हैं, अलगाव नहीं है, न ही उनमें नस्लीय भिन्नता है।

इस ब्रिटिश पलट दृष्टि ने हमारी कौमियत यानी एक समग्र भारतीयता को 'नकली विभाजन' की भट्टी में झोंका है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण 'भारत का विभाजन', 1905 के बंगाल विभाजन के सांप्रदायिक आधार 'बंगभंग' के खिलाफ लाखों भारतीयों ने कोलकाता में प्रदर्शन किया तथा ज्ञापन दिया। इस ज्ञापन पर ध्यान देने की अति आवश्यकता है। इस ज्ञापन में जनता ने माँग की थी कि ''हमारी एक बांग्ला जाति को दो भागों में क्यों बाँटा जा रहा है''। 'बांग्ला जाति' पूरी एक सांस्कृतिक इकाई को प्रकट करती है, जिसमें उपासना पद्धति के आधार को नहीं गिनाया गया था न तवज्जो दी गई थी। लेकिन कट्टरपंथी मजहबी जेहनियत और ब्रिटिश सत्ता ने ठीक एक वर्ष बाद यानी 1906 में उसी महान सुसंस्कृत, समृद्ध बंगाल के शहर ढाका में मुस्लिमलीग की स्थापना की और एक अवैज्ञानिक, अस्वाभाविक, अप्राकृतिक सिद्धांत लाया गया। 'दो राष्ट्रवाद' (Two Nation theory) 'हिन्दू और मुसलमान' दो राष्ट्र हैं, दो कौमियतें हैं। इसकी अवैज्ञानिकता और नकलीपन की पोल खुल गई थी। लेकिन ब्रिटिश सत्ता, स्वतंत्रता संग्राम को कमजोर करने में इस नारे को योजनाबद्ध सैद्धांतिक जामा पहनाने में जुटी रही। कट्टरपंथ, दंगों, वैमनस्यता, घ्रणा के एजेण्डे पर काम करने लगा ताकि सिद्धांत और घ्रणास्पद, हिन्सक कार्यवाहियों से 'तर्क-हकीकत' निकाल कर भारतीयता को तोड़ सकें, राष्ट्र का विभाजन भी कर सकें। जहाँ तक कौम या कौमियत का सवाल है परंपरा, सांस्कृतिक परिवेश, बोली, भाषा रहन-सहन, खान-पान, रोजी-रोजगार, साहित्य तथा लोक सांस्कृतिक पक्ष 'कौम' का निर्माण करता है। 1906 में जब दो राष्ट्रवाद का जहरीला सिद्धांत (नकली) घोषित हुआ। उसके साथ एक और अस्वाभाविक और पूर्णतया अवैज्ञानिक 'स्थापना' सामने लाई गई। 'अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक' ये दो शब्द भारतीय परिवेश में सर्वथा नये तथा विभाजनकारी थे। इन दो शब्दों में कुटिलता का घोर सम्मिश्रण था। जो एक भारतीय कौम को दो भागों में बाँटने पर तुला था।

आज तक इस विभाजनकारी शब्द जो राष्ट्र विभाजन की पूर्ण पीठिका से उभरा था, वैसा ही चल रहा है। 'कौमियत' का आधार धर्म नहीं है। कौम बनती है सांस्कृतिक परिवेश से, जैसा मैंने ऊपर

रेखांकित किया है। भारत में विभिन्न उपासना पद्धतियों की एक कौम है जिसमें धर्म की भिन्नता के अलावा सभी समान हैं। जरा विचार करें पूरा 'यूरोप' ईसाई होकर भी अपनी विभिन्न कौमियत और संस्कृति के साथ अलग-अलग राष्ट्र है। पृथक कौम है। समग्र मुस्लिम देश एक मजहबी होकर अपनी-अपनी भाषा, विरासत के साथ अलग-अलग देश हैं। क्योंकि उनकी कौमियत, सांस्कृतिक परिवेश तथा राष्ट्रीयताएँ पृथक हैं। यहाँ 'धर्म' कहीं भी कौमियत का आधार नहीं है। लेकिन भारत में एक परिवेश, एक सांस्कृतिक आधार, जन्म, भाषा, परंपरा को नकार कर सिर्फ और सिर्फ मजहब को आधार बना लिया? क्यों? इसकी वैज्ञानिकता तथा सांस्कृतिक तत्वों की पड़ताल 'महान बुद्धिजीवियों' ने क्यों नहीं की? अंग्रेजी दासता से पगी दृष्टि और विचार का नायाब नमूना कहा जाना होगा। सांस्कृतिक दृष्टि से भारत में कोई अल्पसंख्यक है ही नहीं, सभी बहुसंख्यक हैं क्योंकि कौमियत (नस्ल) या रेस के वैज्ञानिक आधार के अनुसार भारत की 98.5 प्रतिशत आबादी एक ही कौम है। विज्ञान से आविष्कृत तमाम सुविधाएँ तो सभी बड़े चाव से स्वीकारते हैं, लाउड-स्पीकर, कार, दवाएँ, फोन, टी.वी., दवाखाने, तमाम हथियार, शिक्षा, इंटरनेट, वॉट्सएप, आदि-आदि, लेकिन कौमियत के वैज्ञानिक आधार को मानने को तैयार नहीं हैं। इस पर प्रखर बुद्धिजीवी खामोश क्यों रहते हैं? इस खामोशी के पेंच को जरूरी तौर पर समझने और विश्लेषित करने की जरूरत है।

दूसरी बड़ी गड़बड़ भारत के पूर्वांचल के प्रदेशों को लेकर है। ब्रिटिशकाल से ही भारत के ये प्रदेश खास तरह से षडयंत्र तथाकथित अलगाव से ग्रसित किये गये हैं। स्वतंत्रता के पूर्व तथा पश्चात् हमारे राष्ट्रीय नेताओं का न्यूनतम ध्यान रहा है। इस कारण ब्रिटिश अलगाववाद तथा धर्मांतरण को बढ़ावा देता रहा। दूसरा षड्यंत्र चीन करता रहा है- उसे आम तौर से समझा नहीं जाता। हालाँकि पूर्वांचल की स्थिति तथा भारतीय सांस्कृतिक संदर्भ में डॉ. राममनोहर लोहिया, प्रकाशवीर शास्त्री, अटल बिहारी वाजपेयी, हेम बरुआ प्रभावी तौर से संसद में सवाल उठाते रहे थे। इससे इस क्षेत्र पर ध्यान गया।

चीन इन क्षेत्रों में 'नस्लीय' प्रचार-प्रसार में 1949 से लगा है। विस्तारवाद के साथ वैचारिक तथा मंगोलाभ (मेन्गोलाइड रेस) रेस के योजनाबद्ध प्रचार में जुटा है। किंचित विश्व मानव समुदाय को समझने की कोशिश करें। समग्र पृथ्वीवासियों को विभिन्न क्षेत्रों में उनके रंग, ऊँचाई, बाल, नाक, कपाल आदि के आधार पर महा प्रजापतियों में अध्ययन किया गया है।

नीग्रोसम-आस्ट्रे लाभ महाप्रजाति : इस प्रजाति का मुख्य आवास अफ्रिका है। मानव जाति का एक बड़ा भाग इस प्रजाति में आता है।

मंगोलाभ (मेंगोलाइड) महाप्रजाति : यह एशियाई-अमरीकी महा प्रजाति है। मानव जाति का 37 प्रतिशत भाग है। मंगोलाभ महाप्रजाति के मानव में त्वचा हल्की, गहरी, पीली या पीताभ भूरी है। सिर के बाल काले, कड़े होते हैं। इस प्रजाति का अधिकांश एशिया में, उत्तरी, मध्यवर्ती, पूर्वी, दक्षिणपूर्वी क्षेत्र में है। सोवियत रूस (अब रूस) के एशियाई भागों में मंगोल प्रजाति के समूह हैं। इनमें याकूत, तातार, नोगई, बुर्यात आदि हैं। इस महाप्रजाति में चीनी सर्वाधिक हैं। चीन मंगोलाभ प्रजाति की दुहाई देकर भारत के पूर्वांचल को ही नहीं बल्कि इंडोनेशिया, मलेशिया, थाईलैंण्ड,

वियतनाम को भी मंगोल जाति के नाम पर ''भारतीय सांस्कृतिक परिधि'' से बाहर करने का षड्यंत्र निरंतर करता रहा है। वह भारतीय पूर्वांचल में बोड़ो, असम, मीजोरम, नागालैंड, मणीपुर, अरुणाचल, मेघालय, त्रिपुरा को 'मंगोलाइड' बताता रहा है। ताकि भारतीय परिवार से (यूरोपाइड महाप्रजाति-आर्य प्रजाति) से उसे पृथक कर सके। लेकिन वैज्ञानिक अध्ययनों तथा मस्तिष्क के नाप, रक्त समूह, बाल नासिका से स्पष्ट सिद्ध हो गया है कि पूर्वांचल कहीं से भी मंगोलाइड नहीं वरन भारतीय (यूरोपाइड) प्रजाति का ही मानव समुदाय है। साथ ही पूर्वांचल की साहित्य, पौराणिक आख्यान, भाषा, साहित्य के कथ्य सभी भारतीय हैं। कहीं भी 'चीनी' की उपस्थिति नहीं है।

चीन के नस्लीय प्रचार की काट वैज्ञानिक आधारों, साहित्य संस्कृति तथा राजनैतिक रूप से पूरी तैयारी के साथ चलनी चाहिए।

समस्त प्रजातियों में यूरोपाभ (यूरोपाइड) महाप्रजाति सबसे बड़ी तथा व्यापक है। मानव जाति का 57 प्रतिशत भाग इसमें आता है। इसमें भारत, दक्षिणी-भारत भू-मध्य सागरीय, उत्तरी-अटलांटिक वाल्टिक-इनमें भारतीय, ताजिक, अरबी, यूनानी, इतालवी, स्पेनी, रूसी, जर्मन आदि हैं। यहाँ मेरा लक्ष्य महाप्रजातियों का इतिहास लिखना नहीं वरन चीनी प्रचार का खुलासा करना है। साथ ही भारतीय सांस्कृतिक परंपरा तथा वैचारिक परिधि को देखें तो अखंड भारत, ईरान, अफगानिस्तान, इंडोनेशिया, थाईलैंड, श्रीलंका, भूटान, मलेशिया, म्यांमार, जापान, नेपाल, तिब्बत, इत्यादि भारतीय सांस्कृतिक परिधि के राष्ट्र हैं। यह एक तरह से विश्व का सबसे बड़ा 'सांस्कृतिक जनतंत्र' का क्षेत्र है। जो गहरी धार्मिक-मानवीय-साहित्य-सांस्कृतिक संबंधों के स्नेहमयी धागों से बँधा है।

इस तरह कोई भी दलील चीन के पक्ष में नहीं जाती है। सवाल यह है कि हम सांस्कृतिक शक्ति और उसकी जड़ों उसकी अनिवार्यता को प्राथमिकता देते हैं? तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, घाटशिला, अंकोरवाट, ल्हासा के बारे में क्या सोचते हैं?

आज हम सभी को यह भी सोचना होगा कि क्या तक्षशिला (चूँकि अब पाकिस्तानी जमीन पर है) (तक्षशिला विश्व धरोहर का हिस्सा है।) नालंदा, उज्जैन, वाराणसी, विक्रमशिला, घाटशिला आदि सिर्फ बी.ए., एम.ए., पी.एच.डी. आदि के महज परीक्षा केंद्र ही रहेंगे? क्या भारत में कोई ऐसा स्थान या विश्वविद्यालय विकसित नहीं किया जा सकता जहाँ सिर्फ रचनात्मक, सृजनशील, मौलिक शोध, अध्येयता, विचारक ही 'फैक्ल्टी' हों? वहाँ परीक्षाधारी विद्यार्थी नहीं, सांस्कृतिक विचारकों, समाज निर्माताओं का मौलिक प्रशिक्षण हो 'संकल्प' ही उनकी डिग्री हो? ऐसे ही विश्वविद्यालय की अति आवश्यकता है। क्या इस पर कुछ काम किया जा सकता है? हमें निर्णय लेना चाहिये। इतिहास तथा इतिहास का शिक्षण पूरी तरह से हमलावरों की दृष्टि से होता है। तमाम तथ्य हमलावरों, विध्वंसकों के कारनामों को जायज और इतिहास संमत बताये जाते हैं। कहीं भी 'भारतीय प्रतिरोध' के इतिहास का भारतीयों के बलिदानों का जिक्र तक नहीं है। पूरा इतिहास (11वीं सदी से 20वीं सदी तक) 'हमलावरों और उनकी जीत' पर केंद्रित कर दिया गया है।

यहाँ हमें एक बात अनिवार्यत: समझनी होगी कि तमाम बाहरी सत्ताएँ जिन्होंने भारतीय क्षेत्रों पर बलात कब्जा किया था, अपनी सत्ता कायम की थी, इन सत्ताधारियों ने बाहरी हमलों के वक्त जनता

की रक्षा का कभी कोई दायित्व नहीं निभाया। उल्टे ये सत्ता भाग खड़ी हुई या दुबक गई। नये हमलावरों के लिए भारत को खुला छोड़ दिया गया। ''भारत पूरी तरह लूट का क्षेत्र'' बनाया गया। सत्ता का चरित्र देशराज नहीं बना, वह हमलावर तेवरों के साथ ही रही। यहाँ रेखांकित करना जरूरी है कि हमलावर बने शासकों और बाहरी हमलों के बीच भारत की जनता, उसके किसानों, संतों, साधुओं, क्षत्रियों सहित समस्त जनता के वर्गों ने निरंतर मुकाबला किया। प्रतिरोध निरंतर जारी रहा अपना अस्तित्व बचाया, संस्कृति, भाषा, समाज को सुरक्षित रखा। साथ ही भारतीय समाज ने अपने सांस्कृति जीवन मूल्यों मानवीय संवेदनाओं के संसार को खून के दरिया से गुजर कर भी बचाये रखा।

विचार करें अरब आक्रमण (636 ई. से 711 ई.), गज़नवी आक्रमण (सितम्बर 1001 ई.), सल्तनतकाल (1320-1414 ई.), सैयद सुल्तानों का काल (1414-1415), से 1451-1526 ई. 1526 ई. बाबर से औरगंजेब तक क्या भारतीय प्रतिरोध नहीं हुआ होगा? वे तमाम भारतीय संघर्ष इतिहास के साथ भारतीय संस्कृति की रक्षार्थ, जीवनदायी विरासत का काल है। इतिहास में विशेषकर भारतीय इतिहास को 'जय और पराजय' तक समेट कर खत्म देना। इतिहास में सम्यक दृष्टि नहीं कही जा सकती, न हो सकती है। भारतीय प्रतिरोध का इतिहास लेखन आवश्यक है।

नादिर शाह, हलाकू, तैमूरी हमले के महाविनाश को भारत ही नहीं लगभग अखंडभारत सहित व्यापक एशिया भूल नहीं सकता हमलावर नादिरशाह की मृत्यु के बाद उसका सेनापति अहमद खाँ दुर्रानी 'अहमद शाह अब्दाली' के नाम से 'काबुल' का शासक बन गया। 1747 ई. में इसने पेशावर तथा 1756 में पंजाब पर कब्जा कर लिया। तब भारत में मुगलों की सत्ता थी। उसकी क्या जवाबदारी थी? लेकिन 'अब्दाली' का मुकाबला सर्वप्रथम मराठा अंताजी माणकेश्वर ने किया। जाट राजा सूरजमल, उसके बेटे जवाहरसिंह सहित समस्त घाट किसानों ने अब्दाली के भीषण हमले का जबरजस्त मुकाबला किया।

अब्दाली ने फरीदाबाद लूटा और आग लगा दी और उसके पास छः सौ भारतीयों के कटे सिर थे। अब्दाली ने सिर काटने वालों को प्रति हत्या 8 रु. इनाम दिये। (भरतपुर राजा जवाहरसिंह जाट, पृष्ठ 24, ले. डॉ. मनोहरसिंह राणावत)

एहमद खाँ अब्दाली ने मथुरा पवित्र स्थान को खत्म करने के लिये जहान खाँ तथा नजीबुद्धौला को 20 हजार सेना देकर आदेश दिया ''इन दुष्ट जाटों (हिन्दुओं) के प्रदेश को लूटो और उसे बर्बाद कर डालो, मथुरा नगर हिन्दुओं का धार्मिक स्थान है, उसको पूर्ण रूप से विनष्ट कर दिया जाये। उनके प्रत्येक जिले को लूटो और व्यक्तियों को कत्ल कर डालो। अकबराबाद (आगरा) तक एक भी स्थान न छोड़ो।'' (भरतपुर राजा जवाहरसिंह जाट पृष्ठ 25 पैरा-2 डॉ. राणावत)

अब्दाली अपने पैशाचिक आदेश से संतुष्ट नहीं हुआ, उसने आगे बढ़कर हैवानियत की हद पार करते हुए कहा : जहाँ कहीं जाये (अब्दाली की सेना) खूब लूटे और मारे। जो भी धन सम्पत्ति वे लूटेंगे, वह उनके पास ही रहने दी जायेगी। जो भी हिन्दुओं के सिर काट कर लावे वह उसको प्रधान वजीर के डेरे के पास डाल दे, जिससे उसका मीनार बनाया जाये। इसकी पूर्ण रूप से गणना की जायेगी व प्रत्येक सिर के बदले पाँच रुपये दिये जावेंगे। (भरतपुर महाराजा जवाहर सिंह जाट पृष्ठ 25

पैरा-3, डॉ. मनोहर सिंह राणावत)

अब्दाली के सेनापतियों ने आदेश को पूरी क्रूरता से अंजाम दिया। लेकिन जाट किसानों ने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि लुटेरों, हत्यारों का दृढ़ता से मुकाबला किया जाये, मरने के बाद ही ये विदेशी मथुरा में घुस सकेंगे। फरवरी 28, 1757 ई. को अब्दाली की आतताई, सेना से जवाहरसिंह के जाट सेनानी जूझ गये। तीन हजार भारतीय वीर मातृभूमि की रक्षा करते हुए बलिदान हुए। 15 मार्च 1757 को अब्दाली नरसंहार तथा लूट को देखने मथुरा आया। यहाँ से उसने गोकुल लूटने के लिए सेना भेजी। गोकुल में चार हजार नागा संन्यासियों ने इन विदेशी हमलावरों, हत्यारों को जबरदस्त टक्कर दी। अब्दाली के तीन हजार लुटेरे सैनिकों का सफाया कर दिया। दो हजार संन्यासी शहादत देकर भारतीय प्रतिरोध के इतिहास में अपना पृष्ठ जोड़ गये।

ऐसा कहीं नहीं हुआ कि भारतीयों ने हार मान ली हो। हर जगह, हर समय, भारतीयों ने अपने धर्म, अपनी संस्कृति, अपने देश की रक्षार्थ मुकाबला किया। उसे बचाये भी रखा। इतिहास में इस प्रतिरोध की ताकत तथा हमलावरों को सही तरीके से रेखांकित करना नितांत जरूरी है।

भारतीय प्रतिरोध की एक महत्त्वपूर्ण घटना जनवरी 25, 1765 में सामने आई। सिखों तथा जाटों ने संयुक्त मुकाबला नजीबुल्ला से हुआ। सबसे रेखांकित करने वाली बात यह है कि अवध से दस हजार नागा संन्यासी जवाहरसिंह की मदद को आये, जबरदस्त संघर्ष किया। (पृष्ठ 47, डॉ. राणावत, नूरूद्दीन रशीद पृष्ठ 90)

वृंदावन, मथुरा, गोकुल में भयानक नरसंहार हुआ। बेहिसाब धन लूटा, तमाम मंदिर अन्य पवित्र स्थान तोड़ दिये गये। हत्याकाण्ड के बाद जहान खान ने खुद अपनी-डायरी में लिखा है कि इस संहार से ''वायु ऐसी दूषित हो गई थी कि न मुँह खोला जाता था और न साँस ली जाती थी।'' (गण्डा सिंह पृष्ठ 129, डॉ. राणावत पृष्ठ 28 पैरा 3)

इतिहास को इतिहास के साथ ही देखना होगा। सिर्फ 'जय-पराजय' मात्र लिखकर इतिहास के प्रति न्याय नहीं है। भारत भूमि पर सिर्फ नरसंहार, विध्वंस, हत्या, लूट, अपहर्ताओं के विजय अभियान के लेखन के क्या मायने हैं? इस विजय अभियान की हकीक़त का ब्यौरा, भारतीयों के प्रतिरोध का इतिहास क्यों नहीं है? सवाल बड़ा है, उत्तर इसके उससे भी बड़े हैं।

मैं अंत में यह लिखना (कहना) चाहता हूँ कि 1757 में जहाँ अब्दाली रक्त से भारत को भिगो रहा था। लूट रहा था। उसी समय 1757 प्लासी में क्लाइव पाँव जमा रहा था। सवाल यह है कि ''महानमुगल'' उस वक्त कहाँ थे? उनके शौर्य को क्या हो गया था। अब्दाली के लिए मैदान किसने दिया? मारे गये-लड़े तो सिर्फ नागा संन्यासी, जाट, सिख, राजपूत किसान, गुर्जर किसान, जनता ने अपनी लड़ाई खुद लड़ी। दो पाटों में भारत पिस रहा था।

जो बात मैं कहना चाहता हूँ वह यह है कि अब्दाली की भयावह लूटमार सेना के कृत्य का निरीक्षण खुद करता था। जहाँ ठहरता वहीं कत्ले आम करवाता था। अब्दाली के शिविर में रहने वाले एक सैयद ने इस भीषणता का आँखों देखा हाल का वर्णन स्वयं किया है- सैयद लिखता है ''अर्द्धरात्रि के समय सैनिक लूटमार करने के लिए डेरे से बाहर निकलते थे। लूटमार का प्रबंध इस

प्रकार था कि एक घुड़सवार घोड़े पर सवार होकर दस से बीस तक दूसरे घोड़ों को एक-दूसरे की पूँछ से बाँध कर ले जाता था। जैसे कि एक ऊँट को दूसरे ऊँट की पूँछ से बाँध देते हैं। सूर्योदय के एक घण्टे पूर्व मैंने उन्हें वापस आते देखा। प्रत्येक सवार सब घोड़ों पर लूट का सामान लादकर लाया था। सब से आगे बन्दी लड़कियाँ व गुलाम चलते थे। व्यक्तियों के सिर काट कर कपड़ों में बाँध कर बन्दियों के सिर पर रख कर लाये जाते थे। यह क्रम रोजाना चलता रहा। कटे हुए सिरों को मीनार के रूप में चुन दिया जाता था, जो व्यक्ति इन सिरों को ढो कर लाते थे, उनसे अनाज पिसवाया जाता था। अन्त में उनके सिर भी काट लिये जाते थे। वल्लभगढ़ से आगरा तक यही हाल होता रहा। इस प्रान्त का कोई भी अभागा भाग कर इस दुर्भाग्य से नहीं बच सका।'' (जाट्स पृष्ठ 101-102 गण्डा सिंह, पृष्ठ 60 से अद्धत जवाहर सिंह जाट : डॉ. राणावत पृष्ठ 27)

यह तो महज एक उदाहरण है। ऐसे भीषण रक्त-पात-लूट के आलम से कारनामों की दुनिया भरी है। ये लोग विजेता और 'सभ्य' सिद्ध किये गये। जिन पर देश रक्षा की जवाबदारी थी। वे कहाँ थे? इतिहास सवाल पूछता है।

कहने को अभी बहुत कुछ है। मैंने महज कुछ बातें रेखांकित की हैं। हमें सोचने-समझने के साथ युवापीढ़ी तथा भविष्य की युवापीढ़ी को गंभीरता से इतिहास साम्राज्यवादी व्याख्या की कारा से बाहर लाने की जरूरत है ताकि वह सही इतिहास को समझे अपनी निर्माणकारी भूमिका तय कर सकें। अपनी सांस्कृतिक, साहित्यिक, भाषाई, लोक साहित्य कला की जड़ों की पहचान कर सके।

क्योंकि भारत की पहचान उसके 'सांस्कृतिक' परिवेश से है। इसे निरंतर दृढ़, परिष्कृत करते चलना होगा। हमारी क्या भूमिका है- हम तय करें।

संपर्क : देवास (म.प्र.)
मो. 94240 29724

प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय

समकालीन हिंदी कविता में बाज़ारवाद

समकालीन हिंदी कविता पर बाजारवाद का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। कहीं सीधे कहीं घुमाकर व्यंजना में इसकी तल्ख अभिव्यक्ति हुई है। नया अनहद (नया अनहद : कवि दिनेश कुमार शुक्ल, अनामिका प्रकाशन, नया बैरहना, इलाहाबाद-3) में कवि कबीर के सामाजिक परिवर्तन के अनहद नाद को सामाजिक क्रांति के तुमुल नाद की हद तक ले जाता है। यह अनहद रहस्यवादी सूफी अनहद से कई अर्थों में भिन्न है। यहाँ यथार्थ के खुरदुरे धरातल पर सामाजिक बुर्जुआपन, सामंतवाद, बाजारवाद और सामंतवाद के विरुद्ध गोलबंदी का आह्वान सुनाई पड़ता है। इसकी शीर्षनामा कविता 'नया अनहद' में लगता तो है जायसी, कबीर के रहस्यवाद की विकसित परंपरा का पल्लवन, विश्लेषण पर अंतर्सलिला की तरह यहाँ यथार्थ का खुरदुरापन, सामाजिक बुर्जुआपन, सामंतवाद, साम्राज्यवाद और बाजारवाद की ध्वनि सुनाई पड़ती है। यों यह जायसी के रहस्यवाद की विकसित परंपरा का निर्वचन है परंतु बिंबों और प्रतीकों में आज का समग्र कालबोध यहाँ प्रतिबिंबित है:-

मन में एक पेड़ छतनार/ तहें पै पंछी बसै हजार /कोयल, कौवा और कठफोर /तोता, मैना, हंस, चकोर/जग से मिटता अत्याचार /राजा करता हाहाकार/छाती पीटै सौ-सौ बार /छिपता फिरता साहूकार / फाकै धूरि राज दरबार /जबभी आवैं गुइयाँ चार /खोले सकल मुक्ति के द्वार /टूटै चहुँ दिशि बज्र केवार (उपरिवत् पृष्ठ- 45)

इतना ही संकेत नहीं दिया गया है बल्कि आँख में अँगुली डालकर बताया गया है कि पूँजी के विकट भ्रमजाल ने किस प्रकार लोगों का पग-पग पर शोषण किया है। उसका जीना दूभर हो गया है:-

सो रहा संसार/ पूँजी का विकट भ्रमजाल /सुनकर देखकर अन्याय /कुछ लोग लड़ने के लिए / अब भी बनाते मन मछंदर (उपरिवत् पृष्ठ-46)

कवि ने रहस्यवादियों, सूफियों, सिद्धों और नाथों के प्रतीक, बिंब लेकर भारतीय जनमानस की विकसित होती मुक्तिकामी उदार चेतना को युगबोध से जोड़कर देखा है। इस चेतना को अधिक व्यापक और धारदार बनाते हुए व्यवस्था के विरुद्ध एकजुट होने की भरपूर कोशिश की है। रविशंकर पांडेय ने एक उदाहरण द्वारा यह प्रमाणित किया है कि रहस्यवादी प्रतीत होती कविता की अंतर्ध्वनि कितनी समकालीन और प्रासंगिक है कि यह पूँजीवाद, बाजारवाद के विरुद्ध ताल ठोककर खड़ी है। उनका

मानना है:

''तेजी से पंख पसारते हुए भूमंडलीकरण के दैत्यों ने भौतिक विकास की शानदार इमारत सर्वहारा वर्ग के शोषण पर खड़ी की है, जिसे आज प्रगति का मानक बताते हुए नहीं थकते। आम आदमी गरीब किसान और शोषित मजदूर की कीमत पर बनी भौतिक विकास की ये छवियाँ समाज के बहुलांश की हड्डियों को गलाकर शोषक और शासक वर्ग द्वारा अपने हित साधन के लिए गढ़ी गई हैं।'' (आशय, लखनऊ, अक्टूबर 2004 जून 2005 पृष्ठ-219)

कवि बाजारवाद और उपभोक्तावाद को समझने के लिए गाँव से चलकर महानगर आया है और उसने उसके बनावटीपन और यांत्रिकता को बेनकाब किया है। कवि ने वस्तुओं के व्याकरण का सही पाठ पढ़ा है: वस्तुएँ थीं पैकेजिंग थी, ब्रांड थे च्वाइस थी और क्रेडिट कार्ड थे। / सर्वव्यापी एक मुद्रा थी / अभय-मुद्रा, भूमि-मुद्रा, वज्र-मुद्रा/ और मुद्राराक्षस कीटाणु भर कंप्यूटरों में हँस रहे थे। / और साइनबोर्ड से मुद्रित मुदित मन मानिनी का मद टपकता/उसी रस में उफनकर बह चले थे शहर के नाले। (उपरिवत् पृष्ठ-220)

'ईश्वर की चौखट पर (शैलेंद्र चौहान) (उपरिवत् पृष्ठ-224, नया अनहद पृष्ठ-52) में आज के इस प्रपंची समय को बेनकाब किया गया है। यहाँ जनाभिमुख कविता के सृजन की कठिनाइयों का संकेत है। जहाँ प्रलोभन, सुविधा, पुरस्कार, पीठाध्यक्षता आदि का बोलबाला है। वहाँ कोई जनाभिमुख, लोकसंग्रही कविता का सृजन भला क्यों करेगा? बाजारवाद का भूत यहाँ भी कहर ढा रहा है।'

अनगिनत किस्में पराभव की / रूपरंग, सुख-सुविधाएँ कैरियर / पुरस्कार, प्रोत्साहन /याचनाएँ घुटने टेक सहाय की / झाँकने लगेंगे बगलें / अवसरानुकूल व्यवहार करने वाले कवि/ एक बूढ़े प्रगतिशील आलोचक की / सफेद झक धोती के किनारे से (उस्तरेबाज) (ईश्वर की चौखट पर: शैलेंद्र चौहान, शब्दलोक प्रकाशन, दिल्ली की समीक्षा संजय कुमार गुप्त द्वारा, आशय, लखनऊ, वही अंक पृष्ठ-227)

लगता है कवि के व्यक्तित्व के दो हिस्से या फाँक हैं। चेतन और अचेतन, परस्पर संवादरत हैं, जिसका निष्कर्ष पूँजी और उसका प्रभाव है, जो औपनिवेशिक काल से उत्तर-औपनिवेशिक काल तक एक व्यक्ति और समाज को निरंतर मथ रहा है। तोड़ रहा है। कवि का मौन भी बहुत कुछ कह जाता है कि वह इस भयावह स्थिति के प्रति कितना सजग और विचारशील है:

आई है महादेशों से /हथियारों की नई किश्त तीसरी दुनिया के लिए/जिद है/तकनॉलाजी विकसित करने की क्यों दिखाई देगा तुम्हें/उड़ीसा का महाचक्रवात/भूकंप भुज में/लील गया हजारों जानें /कैसे समझ सकोगे तुम / मेरी आँखें लाल हैं। / सो नहीं पाया रात में / ठीक से / तुम्हें क्या पता / समस्याओं की छोटी-छोटी / हैं कितनी शक्लें / चप्पे-चप्पे पर कितने अभाव / कितनी बदहाली /सूचना अब / पूँजी के प्रभाव से झरती है / पूँजी पर आकर ही सब खत्म होती है। ('ईश्वर की चौखटपर' में 'उस्तरेबाज' कविता)

इस संदर्भ में मुक्तिबोध याद आते हैं। उन्होंने भी कहा है कि पूँजी से प्रेरित, प्रभावित, संचालित मन कभी बदल सकता है? कविता में कहने का आदी नहीं/पर कह दूँ/वर्तमान समाज चल नहीं सकता।/

पूँजी से जुड़ा हृदय बदल नहीं सकता। (उपरिवत, मैं तुम्हें प्यार करना चाहता हूँ)

आज पूँजी का प्रभाव वैश्विक हो चुका है। पूरी दुनिया में आतंक, हिंसा, युद्ध, भुखमरी, अकाल, आत्महत्या, भीषण बेरोजगारी, धनी-निर्धन के मध्य बढ़ती अलंघ्य खाई इसी पूँजी के परिणाम हैं, जिसका उत्पाद है बाजारवाद, जिसने सबको अपने चंगुल में समेट लिया है। 'उस्तरेबाज' कविता इसी की परिणति है।

एक स्त्री का रोजनामचा (अनिल त्रिपाठी) (मुक्तिबोध रचनावली भाग 3, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली) में अर्थाभाव के कारण एक भोली-भाली स्त्री को बाजारवाद के शिकंजे में कैसे पिसना पड़ा, इसकी जीवंत अभिव्यक्ति है। वह अपने बच्चों की खातिर देह का सौदा करने में भी नहीं हिचकती। पुरुषवर्चस्ववादी समाज बाजार से कितना आंदोलित, लाभान्वित है कि उसे जल्दी-जल्दी सब काम निपटाकर ग्राहक की ओर उन्मुख करता है :- लगा लो जल्दी-जल्दी झाड़ू और पोंछा/ कि कहीं कोई आ न जाए / और तुम्हारे एक कमरे की / तख्ती पर पहला ही हर्फ / देर से लिखा जाए/ अभी सो रहा है तुम्हारा बच्चा / इसलिए निपटा लो कुछ काम / ताकि बिना चिड़चिड़ाए / दे सको उसे दूध और बिस्कुट। (एक स्त्री का रोजनामचा : अनिल त्रिपाठी, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली)

'खौलता पानी' (विवेकानन्द) (उपरिवत पृष्ठ -43) में दावा किया गया है कि वहाँ जिंदा बछड़ा फेंक दिया जाए तो उसकी चमड़ी की कीमत लगभग चौगुनी हो जाती है। यह उस वर्ग के लोगों का बयान है, जिनकी सुबह की शुरुआत खौलते पानी को हलक में उतार लेने से होती है। और उनका दावा है कि / खौलते पानी में जिंदा बछड़ा फेंक देने से / उसकी चमड़ी की कीमत / लगभग चौगुनी हो जाती है। (खौलतापानी, विवेकानंद, समकालीन भारतीय साहित्य, मई-जून, 2005, पृष्ठ -190)

इतना हीं नहीं बाजारवाद की धमक ने बया परिवार का अंत कर दिया है। उन बया परिवारों ने / फुटपाथ पर ही दम तोड़ दिए/ जिनके घोंसले बेडरूम की / सेक्सी लाइट में तब्दील कर दिए गए थे। (उपरिवत् पृष्ठ-190)

परन्तु यहाँ यह ध्यातव्य है कि इसके खिलाफ विद्रोह का जज्बा भी मौजूद है। कारण, यहाँ सवाल सिर्फ बछड़े और बया का नहीं है, हम, सब आपका भी है। कारण अलग-अलग किस्म के जीव होते हुए भी ली जा रही जान की चीख एक जैसी ही होती है। इसीलिए बैसाखी से चलता लँगड़ा भी जाग गया है। उसका तेवर आक्रामक हो गया है : और बौखलाए हुए लँगड़े की/बैसाखी भी /बंदूक में बदल जाती है। (उपरिवत् पृष्ठ-190)

अपनी कविता की पंक्तियों से ही दृश्य का निरूपण करता हूँ। आदमी मीनार हो गया है, /आदमी दीवार हो गया है, /उसका खरीददार हो गया है। (आम के पत्ते : रामदरश मिश्र 2004 इंद्रप्रस्थ प्रकाशन के - 71, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051 में 'मेरे मकान में एक आँगन भी है' कविता)

चीजों के लिए चीजों में बदलता जा रहा है मनुष्य/जो जितना ऊँचा बिकता है, उतना ही टिकता है। नाम कमाता है। यह है मनुष्य का त्रासद वर्तमान। इसके दो पहलू हैं-बाहरी या स्थूल और दूसरा भीतरी या सूक्ष्म/बाहरी भूख ने निगल ली है हमारी आंतरिकता। मनुष्य जीवन की पूरी सार्थकता जैसे चीजों में ही समा गयी है। पश्चिम की ओर से आता रंगीन धुआँ हमें लगातार लुभा रहा है। विश्वग्राम के फेर में हर

कोई पड़ा है। पर उसका पता किसी के पास नहीं है। वर्तमान जीवन की कुरूप स्थितियों, विडंबनाओं से भी साक्षात्कार किया गया है कि अब मौलिक-प्राकृतिक नहीं रहा कुछ शेष। बाजारवाद ने उसके स्थान पर कृत्रिमता का जाल फैला दिया है : मौसम आते हैं चुपचाप/भीत पर टँगे कैलंडरों में /समय टहलता रहता है/घड़ियों में धीरे-धीरे /जानी-अनजानी दूरियों के अदृश्य संवाद /टकराते रहते हैं टेलिफोन में / पुस्तकें चुप होती जा रही हैं /और चीखते हुए कैसेट /एक-एक कर उन्हें /अलमारी से बाहर झाँक रहे हैं... (यूँही : प्रेमरंजन अनिमेष, समकालीन भारतीय साहित्य, मई-जून 2005, पृष्ठ-156)

तन-मन का स्पंदनहीन हो जाना ही तत्वत: आज का सभ्यता-संकट है। बाजार ने जैसे हमारे ही घरों में हमें अजनबी बना दिया है। इसलिए अपनी संवेदनाओं को जीवित रखनेवाला कवि इसे बार-बार व्याख्यायित करता है। बाजारवाद का जादू इस कदर सिर पर चढ़कर बोलता है कि मनुष्य सदा अपनी ही मोल-तोल करता है : बिकना तो नहीं/ खुश हो जाता मगर /अपना ही मोलकर (हैसियत, उपरिवत्)

स्त्री-देह का बाजारीकरण व्यापार का एक अहम् मुद्दा बन गया है। वह सिने तारिका हो या फिर कॉल गर्ल या विज्ञापन की स्त्री-सर्वत्र देह, मुद्रा, सौंदर्य प्रदर्शन प्रमुख है। वह भी धन की खातिर। प्रेमरंजन अनिमेष इसे और भी मारक बना देते हैं : विज्ञापन में स्त्री / गोश्त की दुकान पर जैसे / चिड़ियों की तस्वीरें... (बढ़ावा : प्रेमरंजन अनिमेष, समकालीन भारतीय साहित्य, मई-जून 2005, पृष्ठ-197) (हैसियत)

बाजारवाद के लाखों रूप हैं, नाम हैं। उसकी लीला अपरंपार है। आलम यह है कि स्त्री को जलाकर उसका उत्सव मनाया जाता है। स्वाभाविक है कि यह स्त्री के साथ घोर अन्याय, उसका अधिकतम शोषण है पर सब चलता है। बाजार तेरे नाम अनेक, गुण अनेक : मेला लगता है वहाँ /जहाँ एक स्त्री जली थी/स्त्री ही बदल सकती है /बदलने दे सकती है /अपने जलने को उत्सव में (समकालीन भारतीय साहित्य, अक्टूबर 2006, मे डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की कविता 'दूसरे दिन का अखबार' पृष्ठ-124)

डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी बड़ी सूक्ष्मता से राजनीति, पत्रकारिता, जनमत पर छाए बाजारवाद के दारुण प्रकोप को अंकित करते हैं। एक बीस वर्षीया युवती को किस तरह से गुंडों ने फेंक दिया चलती बस से और उसे उठा ले गए। कितनी दारुण स्थिति हुई होगी। पर अखबार ने घटना के दूसरे दिन इस पर किंचित ध्यान नहीं दिया। वहाँ धनबल, बाहुबल किंवा बाजारवाद का ही बोलबाला था : मगर दूसरे दिन का अखबार/गूँज रहा रेल मंत्री की दहाड़ से/धनबल बाहुबल सुरक्षाबल के अट्टहास में /कहीं एक पंक्ति नहीं थी/ उस अनाम अबला के बारे में। (खर्च : विनय विश्वास, समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई-अगस्त 2005, पृष्ठ-123)

पैसा! पैसा! बाजार मनुष्य को आखिर कहीं का नहीं छोड़ता है। वह काल के गाल में समाने के लिए अभिशप्त, विवश है : आखिर पैसे ने /खर्च ही डाला/समूचा आदमी। (सोचो एक दिन : हरे प्रकाश उपाध्याय, समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई अगस्त 2005, पृष्ठ-127)

हरे प्रकाश उपाध्याय को चिंता है कि जो धरती देती है, धारण करती है, पालती है, उसी ने दुकानदारी शुरू कर दी तो एक दिन क्या नजारा होगा। मनुष्य करता रहेगा अनवरत दोहन पृथ्वी का,

करता रहेगा उससे व्यापार, तो एक दिन वह भी हो जाएगी लोकहित से लाचार : हर मिनट/आखिर कितने अधिकतम हादसे हो सकते हैं/गर्भवती स्त्री बलात्कार के कितने सीन झेल सकती है। /भाइयों, अपने अरण्य से बाहर निकलकर /सोचो एक दिन सब लोग /धरती ने शुरू कर दी दुकानदारी तो क्या होगा। (आदमी बाजार में है : अश्वघोष, राजेश प्रकाशन, जी-62, गली न. 5, अर्जुन नगर, दिल्ली-110051)

अश्वघोष के ग़ज़ल संग्रह का नाम ही है आदमी बाजार में है। इक नई रफ्तार में है / आदमी बाजार में है। (उपरिवत्)

इसमें कवि ने उस तार को छेड़ा है, जो चुनावी नतीजों को आमूल बदलने की ताकत रखता है। आदमी का बाजार में होना यह ध्वनित करता है कि वह हो गया है एक अदद सामान और सपने, तुलने, बिकने के लिए आमादा है। 'चीजों का हाल क्या देखें, जेबों के हाल देखे हैं।' इसी ओर संकेत करता है। वस्तुत: हम आर्थिक प्रगति की बात करते हुए कुल राष्ट्रीय उत्पाद और प्रति व्यक्ति आय तक ही स्वयं को सीमित कर लेते हैं। चारों ओर हमारी प्रतिव्यक्ति आय-व्यय क्षमता चक्कर लगाती रहती है। वस्तुत: जनता की हालत इस आर्थिक विपन्नता में दु:ख 'माँजाया' और सुख 'सौतेला' हो जाता है। फलत: प्रजातंत्र के इस महानाटक में जनता से संवाद नहीं है। शायर इस पीड़ा को पल-पल भोग रहा है। इसलिए भी दिलों के अनुवाद संभव नहीं रहे। तब उनका कहना है : इस बाद बरफ के भी तो / खूँ में उबाल देखे हैं। (लावा : जावेद अख्तर, 2012, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2)

जावेद अख्तर बड़ी सहजता से बाजारवाद और उससे उपजी त्रासदी को रेखांकित करते हैं। गिन-गिन के सिक्के हाथ मेरा खुरदुरा हुआ/जाती रही वह लम्स (स्पर्श) की... बुरा हुआ। (उपरिवत्)

इस तुलनीय व्यक्ति ने किस तरह अपने बचपन में अमीर बनने के सपने को पूरा कर तो दिखाया पर उसके परिणाम से भी अवगत कराया। फिर भी वह रोरोकर औंधा पड़ा न रहकर आशा, उमंग, उत्साह का परचम लहरा रहा है : चेहरों से गहरी ये मायूसी मिटा के आओ / इनपे उम्मीद की इक उजली किरण हम लिख दें /दूर तक जो हमें वीराने नजर आते हैं/आओ वीरानों पर अब एक चमन हम लिख दें।

इस प्रकार बाजारवाद के अजदहे से निकलने की भी कोशिश है।

संपर्क : धनबाद (झारखंड)
मो. 9065197429

डॉ. पवन कुमार खरे

महाराजा छत्रसाल का स्वराज और स्वतंत्रता अभियान

महाराजा छत्रसाल एक वीर प्रतापी राजा थे। उनका जन्म सन् 1641 में वर्तमान टीकमगढ़ जिले के लिघोरा विकास खण्ड के ककरकचनाए गाँव में हुआ था। उनके जन्म के समय से ही पिता चंपतराय आक्रान्ताओं के विरुद्ध जीवन-मरण का संघर्ष कर रहे थे। यह वह समय था जब सारी प्रजा आक्रान्ताओं की दु:सह यातनाओं, प्रताड़नाओं को सह रही थी। माँ बहिनों की अस्मिताएँ लूटी जा रही थीं। मातृभूमि इनसे आजादी, मुक्ति का मार्ग हेतु तड़प रही थी।

छत्रसाल एक महान स्वतंत्रता सेनानी थे। मातृभूमि के प्रति उनकी गहरी आस्था थी। अपने निकटतम स्वजनों के विश्वासघात के कारण उनके माता-पिता को दुश्मनों से घिर जाने के कारण आत्मघात कर अपना जीवन त्यागना पड़ा, जब छत्रसाल मात्र बारह वर्ष के थे। बालक छत्रसाल के बालजीवन का गहरा घाव था। पिता की मृत्यु पश्चात छत्रसाल अपने भाई अंगदराय के साथ देवगढ़ चले गये। थोड़े समय पश्चात् अपने पिता को दिये वचनों का पालन करने के लिये छत्रसाल ने पंवार वंश की राजकन्या देवकुँअरि से विवाह किया।

विदेशी आक्रान्ताओं का मासूम प्रजा पर वहशियानापन प्रताड़न, बर्बर क्रूर अत्याचार, माँ-बहिनों की लुटती अस्मिताएँ, इबादत ग्रहों का ढहना देख-देख छत्रसाल का हृदय क्षोभ, घृणा, बदले की भावना से भरता चला गया। मासूम प्रजा के घरों से निकलने वाली रोने-चीखने की आवाज उन्हें व्याकुल करने लगीं। इस करुण विलाप और दमन व्यभिचार अत्याचार को देख भगवान राम के समान भवानी माँ के मंदिर के सामने भुजा उठाकर प्रण लिया कि मैं इन बर्बर आक्रान्ताओं का विनाश कर प्रजा की रक्षा करूँगा। इसके लिये प्राण भी देना पड़े तो पीछे नहीं हटूँगा। इस तरह उन्होंने सभी शोक संतृप्त प्रजा को घर-घर जाकर ढाढस बँधाया।

कालान्तर में छत्रसाल अपने पिता के मित्र राजा जयसिंह की सेवा में अपने भाई के साथ भर्ती हो गये और उन्होंने आधुनिक सैन्य प्रशिक्षण लेना शुरू कर दिया। उस समय राजा जयसिंह औरंगजेब के अधीन दिल्ली सल्तनत के लिये कार्य कर रहे थे। औरंगजेब ने जयसिंह को दक्षिण विजय का उत्तरदायित्व सौंपा था। इस युद्ध से छत्रसाल ने अपने अदम्य साहस शौर्यता, वीरता से बीजापुर युद्ध में देवगढ़ के गौंड़ राजा को पराजित किया। युद्ध में उनके घोड़े ने इतना साथ दिया कि वे अपनी प्राण रक्षा कर पाये। घोड़े को उन्होंने भलेभाई के नाम से विभूषित किया पर इस जीत का सेहरा, उनके सिर पर नहीं बाँधा गया। औरंगजेब के उत्तराधिकार युद्ध में मुगल साम्राज्य भाई-भतीजावाद में बँटता चला गया जिससे मुगल

साम्राज्य की बदनीयत का उन्हें आभास हो गया। दिल्ली सल्तनत की सेवा करनी छोड़ दी।

उस समय मातृ-भूमि के प्रति गहरी आस्था और देशभक्ति का भाव भारतीय जनमानस की आत्मा में बसता जा रहा था। बुन्देलखण्ड में महाराजा छत्रसाल और महाराष्ट्र में वीर शिवाजी इसके सिरमोर थे। ऐसे समय में छत्रसाल ने छत्रपति शिवाजी से मिलना उचित समझा। सन् 1668 में इन दोनों शूरवीरों का मिलन हुआ। उस समय शिवाजी महाराज ने समान उद्देश्यों, गुणों और परिस्थितियों का आभास करवाते हुये छत्रसाल को स्वतंत्र राज्य की मंत्रणा दी।

शिवाजी से स्वराज का मंत्र लेकर सन् 1670 में छत्रसाल वापस अपनी मातृभूमि लौट आये। उस समय महाराज शिवाजी की राष्ट्रीय सकारात्मक सोच उनके मन में प्रवाहमान हो रही थी पर बुन्देलखण्ड की परिस्थितियाँ बिल्कुल भिन्न थीं। अधिकांश रियासतदार जो औरंगजेब के मनसबदार थे, भिड़ने को तैयार नहीं थे। छत्रसाल के भाई बंधु भी दिल्ली साम्राज्य से लड़ाई मोल नहीं लेना चाह रहे थे। धन सम्पत्ति का भी अभाव था। दतिया नरेश शुभकरण, ओरछा नरेश सुजानसिंह बड़े भाई रतनशाह ने औरंगजेब के विरुद्ध साथ देने से मना कर दिया। राजाओं, रियासतदारों से सहयोग न मिलने पर छत्रसाल हताश नहीं हुये। अपने उद्देश्य को दु:खी-प्रताड़ित यातनारत प्रजा के बीच बतलाया। मातृभूमि की स्वतंत्रता की ज्योति गरीबों, दुखियों, प्रताड़ितों, हीनों के घरों में प्रज्जवलित करनी शुरू कर दी। छत्रसाल के बचपन के साथी महाबली-तैली ने अपनी सारी पैत्रिक सम्पत्ति इस पवित्र अभियान के लिये सौंप दी। इस छोटे से गरीब साथी की सम्पत्ति से छत्रसाल ने सन् 1671 में ज्येष्ठ सुदी पंचमी रविवार के दिन विशाल प्रजा के बीच आक्रान्ताओं के अत्याचारों से मातृभूमि को आजाद करवाने की घोषणा करते हुये स्वराज का बीड़ा उठाया। विशाल जनसहयोग से छत्रसाल की शक्ति दिनोंदिन बढ़ती चली गई। गरीबों, दुखियों, दीनों, हीनों, प्रताड़ित माँ बहिनों का विशाल जनसमर्थन देख औरंगजेब छत्रसाल को पराजित करने के लिये व्याकुल हो उठा। उसने रणदूलह के नेतृत्व में तीस हजार सैनिकों को मुगल सरदारों के साथ छत्रसाल का पीछा करने के लिये भेजा। तब तक छत्रसाल ने महाराज शिवाजी से छापामार युद्ध की कला सीख ली थी। उन्हें पता था कि मुगल छलपूर्ण घेराबंदी करने में माहिर हैं। उनके पिता चंपतराय इस छलपूर्ण घेराबंदी में धोखा खा चुके हैं। इस कारण छत्रसाल ने महाराज शिवाजी का युद्ध कौशल अपनाते हुये मुगल सेना को इटावा, खिमलासा, गढ़ाकोटा, घामोनी, रामगढ़ कंजिया, मडियादो, रेहली, रानगिरि, शाहगढ़ वासाकला सहित अनेक स्थानों पर पराजित किया। अनेक मुगलसरदारों को बंदी बनाया। उनसे दंड वसूला। मुक्त कर दिया।

इस विजय से बुन्देलखण्ड में उनका एक छत्र शासन हो गया। छत्रसाल की राष्ट्रभक्ति, वीरता, उदार हिन्दुत्व भाव सर्वधर्म समभाव ईश्वर के प्रति असीम आस्था भाव के कारण उनकी कीर्ति बढ़ती चली गई। उन्होंने एक विशाल सेना तैयार कर ली। सेना में उनके 72 प्रमुख सरदार थे। बसिया के युद्ध में मुगलों ने उन्हें राजा की मान्यता प्रदान कर दी। कांलिजर के किले पर आक्रमण कर विजय हासिल की। मांधाता चौबे को किलेदार घोषित कर दिया। उनके प्रचण्ड पराक्रम से आहत होकर मुगलसरदार तहबरखाँ, अनवर खाँ, सहरूद्दीन, हमीद बुन्देलखण्ड छोड़ दिल्ली भाग गये। बहलोल खाँ छत्रसाल से युद्ध में मारा गया। मुरादखाँ, दलेह खाँ, सैयद अफगन जैसे सिपहसालार बुन्देला वीरों से पराजित होकर भाग गये। 1678 में महाराजा छत्रसाल ने अपना विशाल साम्राज्य स्थापित कर पन्ना के गौंड़ राजा को

पराजित कर पन्ना को अपनी राजधानी बनाया। गुरु प्राणनाथ के निर्देशन में अपना राज्याभिषेक करवाकर महाराजा की उपाधि प्राप्त की।

बुन्देलखण्ड केसरी के नाम से विख्यात महाराज छत्रसाल के बारे में कहा जाता है-

'इत यमुना उत नर्मदा, इत चंबल उत टोंस।
छत्रसाल सो करन की, रही न काहू हौंस।।'

राज्याभिषेक के पश्चात विजय यात्रा के दूसरे सोपान में छत्रसाल ने रणपताका फहराते हुये सागर, दमोह, एरछ, जलापुर, मोदेहा, भुस्करा, महोबा, राठ पनवाड़ी, अजनेर, कालपी, विदिशा का किला जीत लिया। डर के मारे सभी फौजदार छत्रसाल को चौथ देने लगे। बघेलखण्ड, मालवा, राजस्थान, और पंजाब तक के युद्ध भी जीते। सन् 1707 में औरंगजेब की मृत्यु, पश्चात् उसके पुत्र आजम ने बराबरी से व्यवहार कर सूबेदारी देनी चाही जिसे छत्रसाल ने संप्रभु राज्य के आगे अस्वीकार कर दी।

महाराजा छत्रसाल अब अस्सी वर्ष के हो चुके थे। इलाहाबाद के नवाब मुहम्मद बंगस ने आक्रमण कर दिया। यह एक ऐतिहासिक आक्रमण था। वृद्धावस्था शरीर में घर कर चुकी थी। पहले जैसा ओज अब नहीं रहा था। उनके दोनों पुत्र हिरदेशाह और जगतराज में आपस में अनबन चल रही थी। यही एक युद्ध था जिसमें उनके पराजित होने की सम्भावना थी। परिस्थिति की गम्भीरता को देखते हुये उन्होंने मराठा सरदार बाजीराव से मदद माँगते हुये अपने हृदय के उद्‌गार व्यक्त करते हुये दोहा लिखकर भेजा-

'जो गति-गज और ग्राह की
सो गति भई है आज।
बाजी जात बुन्देल की
राखौ बाजी लाज।।'

पत्र को पढ़ते ही बाजीराव भावुक हो उठे। वे प्रचण्ड महावीर योद्धा थे। अपने वीर मराठा सैनिकों के साथ छत्रसाल का सहयोग देने के लिये रणभूमि में आ गये। महाराज छत्रसाल भी युद्ध में कूद गये। दोनों सेनाओं के बीच भीषण युद्ध हुआ। इस युद्ध में मुहम्मद बंगस पराजित हुआ। प्राण बचाकर उसे भागना पड़ा। इस तरह बुन्देलों ने मराठों के साथ जो एक जुट होकर मुगलों के खिलाफ युद्ध किया वह बेमिसाल था।

महाराज छत्रसाल ने बाजीराव को अपना तीसरा बेटा माना। अपने दोनों पुत्रों हिरदेशाह और जगतराज के साथ राज्य का तीसरा हिस्सा भी दिया। अपनी बेटी मस्तानी का विवाह किया।

महाराजा छत्रसाल प्रचण्ड वीर-महावीर, रणधीर होने के साथ-साथ विद्यावान, गुणवान, दयावान भी थे। राजशाही होने के साथ-साथ लोकशाही में भी उनकी आस्था थी। प्रजा के सुख-संतोष को ही राज्य का दृढ़ आधार मानते थे। यही कारण था कि उनकी राजकीय सेवा में दलित, अदलित, पिछड़े, अगड़े सभी जातियों के लोग थे।

राज्य के अन्नदाता किसानों को वे बहुत चाहते थे उनके राज्य में किसान न तो कर्जीले थे न ही भूख, कर्ज, के भय से आत्महत्या करते थे। गरीबों, हीनों, दीनों के प्रति गहरा करुणा भाव, दयाभाव, संवेदनशीलता, आकुलभाव था। यह उनके द्वारा रचित इस पद में झलकता है जिसमें वे सैनिकों को आदेश देते हैं कि सैनिकों की टुकड़ियाँ किसानों के खेतों से न गुजरें जिससे उनकी फसल खराब न हो।

चाहो धन धाम भूमि भूषन, भलाई भूरि
सुजस सहूर जुत रैयत को लालियो।
तोड़ादार, घोड़ादार, वीरनि सो प्रीति करि
साहस सो जीति जंग खेत से न चालियो।
रैयत सब राजी रहे ताजी रहे सिपाहि
छत्रसाल राजान को वर्जित सदा अनीति।
द्विरद देत की नीति सो, करत न रैयत प्रीति

परिवार की प्रतिष्ठा, कुल की साख को वे अपने प्राण देकर भी गिराना नहीं चाहते थे। 'रघुवसन्हि महा जँह कोई होई, तेहि समाज अस कहय न कोई' के भाव को वे हमेशा अपने अन्तर्मन में रखते थे। वे कहा करते थे लाखों कपूतों से एक ही सपूत बेटा अच्छा होता है–

कुलवारों एकहिं भलो, अकुल भले नहीं लाख।
तुलत न सेर सियार सम, छत्रसाल नृप भाख
लाख घटे कुल साख न छाँड़िये
वस्त्र फटे प्रभु औरहूँ दै है।
द्रव्य घटे घटता नहीं कीजिये
दैहे न कोऊ पै लोक हँसे है।

भक्ति महाराज छत्रसाल की जिंदगी का सबसे आनंददायी पल हुआ करती थी। निर्मल भक्ति के प्रवाह में इतना ऊँचा ख्वाब जिसमें से खुद को भगवान से अलग होकर नहीं देख पाते थे। आराध्य को खुशी में ही अपनी खुशी दिखाते हुये भावविभोर होकर कह उठते थे–

तुम घनश्याम हम जाचक मयूर मत्त
तुम सुचि स्वाति हम चातक तुम्हारे हैं।
चारुचन्द्र प्यारे तुम लोचन चकोर मोर
तुम जगतारे हम छतारे उचारे हैं।
तुम गिरधारी हम कृष्ण व्रत धारी।
तुम दनुज प्रहारे हम यवन प्रहारे हैं।

आगे वे कहते हैं संसार में वही व्यक्ति नामी है जिस पर भगवान की कृपा होती है–

ऐरे अभिमानी नर ज्ञानी भये कहा होत
नामी तर होत गरुणगामी के हेरे ते।

इस महान योद्धा ने 52 वर्ष के शासन काल में 42 युद्ध लड़े। कभी भी पराजित नहीं हुये। राजभक्ति, प्रजाभक्ति, देशभक्ति दीनों हीनों के प्रति दया, प्रेम का भाव धारण किये हुये स्वतंत्रता के लिये संघर्षरत इस महान सेनानी ने 20 दिसम्बर 1731 को 82 वर्ष की उम्र में मऊसानिया के पास घोड़े सहित अपना शरीर त्याग इस संसार से कूच कर लिया।

संपर्क : उज्जैन (म.प्र.)
मो. 9424802055

डॉ. जयश्री वाडेकर

मीडिया और राष्ट्रभाषा हिंदी

दुनिया की प्राचीन भाषाओं में हिंदी सबसे प्राचीन भाषा है। दुनिया में सर्वप्रथम संस्कृत भाषा का निर्माण हुआ, संस्कृत का सरल अनुवाद हिंदी है। हिंदी के बाद भारत वर्ष में तेलुगु,कन्नड़, गुजराती, उर्दू तथा कई अन्य भाषाएँ अस्तित्व में आईं। आधुनिक संसार में ऐसा कोई देश नहीं, जहाँ हिंदी न बोली जाती हो और हिंदी भारत की धरोहर है। हिंदी एक ऐसी भाषा है जिसे समझना बाकी भाषाओं से सरल है। हिंदी भाषा व्यवहार को गति प्रदान कर रही है। संचार भाषा के सभी गुण हिंदी में हैं। जिसके कारण वह विश्वभाषा बन रही है। विधि, चिकित्सा, वाणिज्य के साथ-साथ संगणक, इंटरनेट, सैटेलाइट की भाषा बन गई है। भाषा का मानकीकरण जटिल प्रक्रिया है। भारतेंदु काल में लिपि का विवाद इतना तीव्र था कि हिंदी को फारसी लिपि में लिखने का आग्रह था परंतु भारतेंदु मंडल के लेखक श्री बालकृष्ण भट्ट के उदाहरण से इस विवाद की गंभीरता का पता चलता है- 'यदि देश का अभिमान हमको है तो ऐसा उपाय शीघ्र ही करना चाहिए जिससे हमारी एक जातीय भाषा हो जाए। यहाँ पर इतना ही हमें अवश्य कहना चाहिए था कि यद्यपि जातीय भाषा हम लोगों की कोई नहीं है परंतु जातीय अक्षर हैं... और हमारी जातीय भाषा कभी होगी तो इसके अक्षर भी वही अक्षर होने चाहिए जिनमें कि इस समय जातीयता है। वे अक्षर देवनागरी हैं और भारतवर्ष की भाषाओं में एक भाषा भी ऐसी है जो इन उक्त अक्षरों में लिखी जाती है, और वह भाषा ईश्वर की कृपा से हिंदी है।' (*हिंदी प्रदीप ,फरवरी 1886,पृ.क्र.21)*

मीडिया पर छाई हिंदी को केवल भाषाई संस्कार के एकांगी नजरिए से नहीं देखा जाना चाहिए। मीडिया की हिंदी ने देश, धर्म की दीवारों को तोड़ने का ऐसा करिश्मा कर दिखाया है, जो अपूर्व है। हिंदी के विस्तार और विकास के नित नए मौके कंप्यूटर और इंटरनेट विस्तार के दौर में सामने आ रहे हैं। यूनीकोड पर आधारित ऑपरेटिंग सिस्टम और नित नए हिंदी सॉफ्टवेयरों के विकास से हिंदी कंप्यूटर की चाल बढ़ने लगी है। हिंदी सॉफ्टवेयर उपकरण महत्त्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में आया है। इसमें उपलब्ध सुविधाओं में हिंदी के टू टाइप फोंट्स, की-बोर्ड ड्राइवर, मल्टीफॉन्ट की बोर्ड इंजन, यूनीकोड आधारित ओपन टाइप फोंट्स, हिंदी में फायरफॉक्स, ब्राउजर, ओसआर शब्दवर्तनी संशोधक, टेक्स टू स्पीच प्रणाली आदि प्रमुख हैं। मीडिया में हिंदी की कई जगह कमजोर स्थिति के कारण, हिंदी का रोजी-रोटी से जुड़ाव न होने के कारण, हिंदी भाषा और साहित्य के प्रति कम रुचि और तेजी विकसित हो रही प्रौद्योगिकी के साथ हिंदी को बढ़ाने में हिंदी प्रेमियों की असफलता और सरकार की उदासीनता है।

डॉ. अमरसिंह वधान अपने आलेख 'कंप्यूटर और मानव सोच' में कहते हैं- यदि भाषा का संबंध मन से और मानसिकता से है तो यह सर्वसम्मति से स्वीकार करने में संकोच नहीं होना चाहिए कि विश्व में हिंदी भाषा-भाषी 730 मिलियन, चीनी 726 मिलियन तथा अंग्रेजी 397 मिलियन हैं। विश्व में हिंदी जानने वालों की

कुल संख्या 1,10,29, 447 है। इस आधार पर यह माना जाना चाहिए कि आज विश्व की प्रथम भाषा है चीनी, दूसरे तथा तीसरे स्थान पर विश्व का 82 प्रतिशत व्यवसाय अंग्रेजी में न होकर अन्य भाषाओं में होता है। भारत में वैचारिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक विविधता होते हुए भी जो यहाँ एकात्मता मौजूद है, उसमें हिंदी का विशिष्ट योगदान है। मीडिया बाजार की आवश्यकता है। हिंदी मीडिया की वेबसाइटों का हिंदीकरण होते जाना, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर हिंदी के नए जलवे को दर्शाता है। इंटरनेट के जमाने का महत्त्वपूर्ण कदम है कि व्यापारी और उपभोक्ता की आवश्यकता की पूर्ति के प्रयोजन ने ई-कॉमर्स को जन्म दिया है। ई-कॉमर्स से यह तुरंत ज्ञान होता है। इससे ठगने की संभावना नहीं रहती और महँगी चीजों के आकार-प्रकार और मूल्यों की जानकारी ई-कॉमर्स से प्राप्त होती है। इंटरनेट सेवा के अंतर्गत ई-मेल, चैटिंग, वॉइस मेल, ई-ग्रीटिंग आदि बहुपयोगी क्षेत्र में हिंदी भाषा का विकास एवं संप्रेषण की संभावनाएँ अधिक है। 'स्पीच रिकग्निशन' यह एक ध्वनि आधारित कंप्यूटर सॉफ्टवेयर है। 'सूचना प्रौद्योगिकी के तहत मशीनी अनुवाद एवं लिप्यांतरण सहज एवं सरल हो गया है। सी-डैक पुणे ने सरकारी कार्यालयों के लिए अंग्रेजी-हिंदी में पारस्परिक कार्यालीन सामग्री का अनुवाद (निविदा सूचना, स्थानांतरण आदेश, गजट परिपत्र आदि) करने हेतु मशीन असिस्टेड ट्रांसलेशन 'मंत्रा' पैकेज विकसित किया है। हिंदी भाषा में वेबपेज तैयार किया है जिससे कोई भी व्यक्ति, संस्था अपना वेबपेज हिंदी में प्रकाशित कर सकता है।' *(मीडिया और हिंदी, डॉ. मधु खराटे, डॉ. हनुमंतराव पाटिल, डॉ राजेंद्र सोनवणे, पृ.क्र. 79)*

हिंदी युक्त बाजार अब विश्व में फलने-फूलने लगा है। 21वीं सदी का ज्ञान-विज्ञान, तकनीक आदि नित्य नया ज्ञान सीखने का माध्यम हिंदी बनी है। आज मीडिया के सभी रूपों में समाचार -पत्र से लेकर पुस्तक प्रकाशन, टी.वी. और इंटरनेट सभी के लिए कंप्यूटर का प्रयोग हो रहा है। कंप्यूटर और इंटरनेट के युग में किसी भाषा और उसकी लिपि के लिए निर्मित सभी सॉफ्टवेयरों में अनुकूलता अनिवार्य है। देवनागरी के सभी सॉफ्टवेयर बाइनरी प्रणाली के एक समान कूट में नहीं बनाए हैं।

मेडिकल और प्रबंधन, इंजीनियरिंग में स्नातक स्तर पर हिंदी भाषा में जनसंपर्क प्रोजेक्ट अनिवार्य हो जिससे वे हिंदी में सूचना संग्रह कर सकें। भारत सरकार के सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय के नीति निर्धारण में हिंदी भाषा को समुचित स्थान प्राप्त होना चाहिए। भारत सरकार के कई विभागों में मंत्रालय की साइट पर फ़ोन्ट्स के अभाव स्वरूप पढ़ने में दिक्कतें न हो सकें इसके लिए सभी सरकारी वेबसाइट द्विभाषी (हिंदी- अंग्रेजी)होनी चाहिए। राजभाषा नियम के अनुसार सभी वेबसाइट हिंदी में तैयार करना अनिवार्य है। साहित्य और मीडिया दोनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में है। साहित्य भावना के धरातल पर 'बेहतर मनुष्य' और 'बेहतर समाज' की संकल्पना को साकार करने में समाज का मददगार बनता है और मीडिया अपनी संचरणशीलता के व्यापक परिप्रेक्ष्य में जन जागरण की पृष्ठभूमि तैयार करता है।' *(पृ.क्र. 137)*

मीडिया और हिंदी साहित्य दोनों के चिंतन में मनुष्य है और यही चिंता दोनों को परस्पर जोड़े रखने के लिए काफी है। इन दोनों के सरोकारों पर आज विचार-विमर्श करना जरूरी है क्योंकि भूमंडलीकरण के युग में मानवीय संवेदनाएँ निरंतर क्षीण होती जा रही हैं। टी.वी. चैनलों की मेहरबानी से घर में घुस आई अपसंस्कृति को नियंत्रित करने में माँ-बाप की असमर्थता विचारणीय है। अंत्याक्षरी के माध्यम से हिंदी

कविता को याद करने की परंपरा और प्रवृत्ति पर टी.वी. संस्कृति ने भीषण कुठाराघात किया है। विभिन्न टी.वी. चैनलों द्वारा आयोजित प्रतियोगिताओं के लिए बच्चे कविता नहीं फिल्मी गीत याद करते और सुनाते हैं। पहले घर और विद्यालय में अंत्याक्षरीयों के बहाने बच्चे ढेरों हिंदी कविताएँ याद करते थे। इससे उनके मन में कविता के प्रति रुझान और लगाव पैदा होता था। कविता का एक वातावरण अपने आप बनना शुरू हो जाता था। उसका दूरगामी परिणाम जीवन की विभिन्न समस्याओं को सुलझाने के काम आता था। सूक्तियाँ और नीतिवचन इसमें मददगार होते थे, किंतु टी.वी. ने जो वज्रपात किया है- उससे यह लहलहाती प्रवृत्ति सूखने के कगार पर है। इतना ही नहीं, आज की पीढ़ी अपनी सभ्यता और संस्कृति को छोड़ फिल्मी गीत-संगीत, क्रियाकलाप, नेता, अभिनेता के नाम याद करने में जिस तरह व्यस्त है, वह साहित्य अथवा समाज के लिए अच्छे संकेत नहीं हैं। *(मीडिया और हिंदी साहित्य, संपादन -राजकिशोर ,पृ.क्र.39)*

एक समय हिंदी फिल्मों ने महान कथाकार प्रेमचंद, भीष्म साहनी आदि को जोड़ने की कोशिश की थी। नीरज, प्रदीप, शैलेंद्र, भरतव्यास आदि ने गीत लिखे थे परंतु आज स्थिति काफी भिन्न है। फिल्मों का उद्देश्य मात्र सस्ता मनोरंजन रह गया है। हिंसा, वासना, अश्लीलता यह सब देखकर साहित्यिकता का दामन पकड़ कर चलने वाली फिल्मों का अपना अलग ही महत्व था। सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन की इस गति ने साहित्य और कला के भविष्य पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है। इनका संरक्षण चिंता का विषय बन गया है। संघर्षरत इंसान नर या नारी ओझल हैं। दुष्यंत की पंक्तियाँ इस समय याद आती हैं- 'तुम्हारे पाँव के नीचे कोई ज़मीन नहीं, कमाल यह है कि फिर भी तुम्हें यकीन नहीं।' माध्यमों के यथार्थ ने हमारे संबंधों को बदल कर रख दिया है। उन रिश्तों की मिठास, उनकी गंध उनकी मधुरता गायब हो चुकी है। शेष है लेन-देन, औद्योगिकता और जरूरत हमारे हाथ से क्या छूटा है -संवेदनशीलता, मनुष्यता, नैतिकता, सामाजिकता और अपनापा बदलने में क्या पाया है। लूट-खसोट, लिप्सा, निर्द्वंद्व, व्यक्तिवादिता आदि यह आज लेन-देन का हिसाब है। अर्थशास्त्र में लागू होने वाला 'ग्रेशम का नियम' आज भी मीडिया में लागू है। ग्रेशम का नियम है कि खोटा सिक्का, अच्छे सिक्के को बाजार में प्रचलन से बाहर कर देता है। मनुष्य की प्रवृत्ति होती है कि वह पुराने, फटे नोट को पहले बाजार में चलन में रखता है तथा अच्छी और नई मुद्रा को अपने पास सँभाल कर रखता है। अत: बाजार में पुरानी नोट या मुद्रा का चलन होता है और नई नोट लोगों के पैकेट में पड़ी रहती है। यही हाल मीडिया में है। *(वही,पृ.क्र. 45)*

हिंदी न्यूज़ चैनलों और दूरदर्शन आदि कई वेबसाइटों की भरमार भी इंटरनेट पर लगी है। भूमंडलीकरण के इस दौर में विश्व भाषा हिंदी इंटरनेट के लिए उपयुक्त और महत्त्वपूर्ण भाषा बन गई है। इंटरनेट विश्व की सर्वाधिक सक्षम सूचना प्रणाली है। आधुनिक विश्व के सूचना विस्फोट क्रांति का आधार इंटरनेट है। इंटरनेट के ताने-बाने में आज पूरी दुनिया है। विश्व के जिस शहर में इंटरनेट की सुविधा उपलब्ध है, वह शहर सूचना के सुपर हाइवे का हिस्सा बन गया है। दुनिया में जो कुछ भी घटित होता है और नया होता है वह सुपर हाइवे के उस शहर में तत्काल पहुँच जाता है। सूचना प्रौद्योगिकी के दो आधार हैं।-1)प्रिंट मीडिया 2)इलेक्ट्रॉनिक मीडिया। सूचना प्रौद्योगिकी में माइक्रो इलेक्ट्रॉनिक में सॉफ्टवेयर और हार्डवेयर दोनों का प्रयोग शामिल है। सूचना प्रौद्योगिकी अत्यधिक तेज गति से परिवर्तित होने वाली प्रौद्योगिकी है, जो बहुत ही कम समय में उत्पादों को व्यापक रूप में प्रचलित बना देती है। किसी भाषा

को व्यापकता प्रदान करने में सूचना प्रौद्योगिकी और कंप्यूटर का महत्त्वपूर्ण योगदान है। ऑडियो-वीडियो उपकरण अब पत्रकारिता के अभिन्न अंग बन चुके हैं। कंप्यूटर, इंटरनेट व अत्याधुनिक साधनों से समाचार की गति आश्चर्यजनक रूप में बढ़ी है। आज के उद्योग, प्रौद्योगिकी प्रधान हैं। हिंदी भाषा के दो स्वरूप हैं- एक प्रयोजनमूलक और दूसरा परंपरागत साहित्यिक का।

संविधान में हिंदी को राजभाषा घोषित करने के उपरांत हिंदी की दुहरी भूमिका हो गई है। पहली साहित्यिक, दूसरी प्रशासनिक जो आज की युगीन परिस्थिति में महत्त्वपूर्ण है। हमारे प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी ने हमें एक नारा दिया डिजिटल इंडिया का संचार के लिए इससे अच्छा योग कोई नहीं हो सकता है। पल भर में दुनिया को पूरी जानकारी यहाँ उपलब्ध है। माननीय नरेंद्र मोदी जी का अमेरिका का भाषण बहुत प्रख्यात और चर्चित रहा है जिसमें उन्होंने कहा था कि 'दुनिया हमें साँप-सपेरे के देश के तौर पर जानती थी पर आज दुनिया को यह एहसास हो गया कि साँप-सपेरे वाले लोग कभी अँगुलियों से माउस चलाते हैं। सोशल मीडिया से व्यक्ति का वजन, प्रभाव और लोकप्रियता तौली जा रही है। सोशल मीडिया ने संचार माध्यमों की दुनिया को बड़े बुनियादी ढंग से बदल दिया है। नए संप्रेषण मंचों और पुराणों में एक बुनियादी अंतर है। रेडियो पत्र-पत्रिकाओं, अखबार आदि की संवाद क्षमता आकर्षण के कारण शक्तिशाली बनती है। दूसरे माध्यम से अंत: क्रियात्मक आपसी संवाद संभव बनाता है। अब यह डेक्सटॉप, कंप्यूटर, लैपटॉप से निकलकर मोबाइल फोन पर आ गया है। तो सर्वसमय, सर्वव्यापी और सर्वसुलभ हो गया है। राजनीतिक रणनीतियाँ चुनावी नतीजे में अपना स्थान बनाया।

कंपनियाँ प्रचार-प्रसार मार्केटिंग और ग्राहक तक पहुँचने के तरीके बदल गए। शासन उद्योग व्यापार मनोरंजन राजनीति और मीडिया के लोगों के लिए यह मंच बहुत महत्त्वपूर्ण है। भाषा में सशक्त और प्रभावी संप्रेषण बचेगा या नहीं यह खतरा गंभीर हो रहा है, नई पीढ़ी में अच्छी भाषा पढ़ने से असरदार भाषा हासिल होगी। अच्छी भाषा के बगैर गहरा। गंभीर चिंतन और ज्ञान निर्माण संभव नहीं। यह खतरा एसएमएस ट्विटर, फेसबुक, व्हाट्सएप और ईमेल में झलक रहा है। इस प्रकार की अटपटी भाषा पढ़ रही युवा पीढ़ी की खिचड़ी युक्त शैली से भाषा के प्रति चिंतन और गंभीरता का विषय है। इंटरनेट आधुनिक सदी का ऐसा ताना-बाना है, जो अपनी स्वच्छंद गति से पूरी दुनिया को अपने आगोश में लेता जा रहा है और इसे कोई नहीं रोक सकता। यह एक ऐसा तंत्र है कि जिस पर किसी एक संस्था या व्यक्ति या देश का अधिकार नहीं है। बल्कि सेवा प्रदाताओं और उपभोक्ताओं की सामूहिक संपत्ति है। इंटरनेट सभी संचार माध्यमों का समन्वित एक नया रूप है।

निष्कर्ष : मीडिया हमारे लिए वरदान बन सकता है क्योंकि वह अनंत ऊर्जा और क्षमता से भरा है, सबसे ताकतवर है। अगर वह सही दिशा और सही गति से चल सके तो हमारे समाज का नक्शा बदलने में देर नहीं लगेगी। साहित्य, कला, विज्ञान और संस्कृति आदि की उन उपलब्धियों को जो जीवन को बेहतर बना सकते हैं, लोगों तक पहुँचाने में यह सहायक हो सकता है। यह तभी संभव हो सकेगा, अतीत, वर्तमान और भविष्य के सेतु के रूप में इसे गतिशील करके इसे जीवनोन्मुखी और समाजोन्मुखी रखा जा सकता है। जिससे सच्चे जनतंत्र की ओर बढ़ने में सहायता मिल सकती है।

संपर्क : जालना (महाराष्ट्र)
मो. 9923839174

प्रमोद भार्गव

संकट में हैं वनवासियों की बोली और भाषाएँ

मनुष्य कई प्रकार की भाषाएँ बोलते हैं। एक भाषा में कई बोलियाँ विलय रहती हैं। यूँ भी कह सकते हैं कि एक भाषा को कई बोलियों के रूपों में बोला जाता है। हिंदी लिखी जरूर देवनागरी लिपि में जाती है, लेकिन उसे समृद्ध बनाने का काम हिंदी भू-क्षेत्र में प्रचलित बोलियों ने ही किया है। तत्पश्चात् भी भाषा और बोलियाँ सनातन व अनंत नहीं होतीं। ये लुप्त और नए-नए रूपों में विकसित होती रहती हैं। इस समय अंग्रेजी वर्चस्व के चलते पूरी दुनिया में लोक-भाषा और लोक-बोलियों पर संकट गहराया हुआ है। कमोवेश यही स्थिति देश की जनजातियों अर्थात् वनवासियों द्वारा बोली जाने वाली बोली और भाषाओं की है। इस समय सबसे ज्यादा मध्य-प्रदेश के सहरिया वनवासी और पूर्वोत्तर भारत के वनवासियों की भाषाएँ व बोलियाँ अस्तित्व के संकट से जूझ रही हैं।

गौरतलब है, स्वाधीनता दिवस 26 जनवरी 2010 को अण्डमान द्वीप समूह की 85 वर्षीय बोआ के निधन के साथ ग्रेट अंडमानी भाषा 'बो, हमेशा के लिए विलुप्त हो गई है। इसी तरह नवंबर 2009 में एक और महिला बोरो की मौत के साथ 'खोरा' भाषा का अस्तित्व समाप्त हो गया। भारत में ऐसी 780 भाषाएँ बोली जाती हैं, जिनमें से अनेक भाषाएँ संकटग्रस्त हैं। विषेशत: जनजातियों द्वारा बोली जाने वाली बोलियाँ बिला जाने के करीब हैं। विलोपीकरण के निकट खड़ी भाषाएँ 86 विभिन्न लिपियों में लिखी जाती हैं। इनमें से 122 भाषाएँ ऐसी हैं, जिनके बोलने वालों की संख्या लगभग दस हजार ही रह गई है। बीसवीं सदी से लेकर अब तक भारत की 250 भाषाएँ विलुप्त हो चुकी हैं। किसी भी भाषा की मौत सिर्फ एक भाषा की ही मृत्यु नहीं होती है, बल्कि उसके साथ ही उस भाषा का ज्ञान-भंडार, इतिहास, संस्कृति उस क्षेत्र का भूगोल और बोलने वालों के जीवन से जुड़े अनेक तथ्य और व्यक्ति भी इतिहास का हिस्सा भर रह जाते हैं। जनजातीय समुदायों से जुड़े लोगों के पास जड़ी-बूटियों की जानकारी और इनके औषधीय उपयोग का वृहद् ज्ञान है। अतएव यह ध्यान रखना जरूरी है, कि इनके बोलने वाले सिमटकर इक्का-दुक्का बोलने वाले और सुनने वालों तक ही संकुचित न हो जाएँ? पूर्वोत्तर भारत की बोडो, डीमसा, हमर, करबी, अंगामी, बेटेई, डेयुरी, खासी, काबुई, कोच, ओ, कोनयक, मेटेई एवं मेक भाषाओं पर संकट के बादल मँडरा रहे हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में वनवासियों की आबादी 10.4 करोड़ है, जो 705 अनुसूचित जनजाति समुदायों में बँटी हुई है। 'पीपुल्स लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया'

के अनुसार भारत में 780 भाषाएँ बोली जाती हैं, जिनमें से करीब 400 भाषाएँ अगले 50 वर्षों में लुप्त हो सकती हैं। इनमें 80 प्रतिशत भाषाएँ वनवासी समुदायों से जुड़ी हैं।

ग्वालियर-चंबल के सहरिया वनवासियों द्वारा बोली जाने वाली भाषा 'बैयर-बानी' भी विलुप्ति के कगार पर है। हालाँकि यह बोली केवल सहरिया जनजाति में बोली जाती हो, ऐसा नहीं है, ठेठ ग्रामीण अंचलों में आज भी यही बोली अधिकांश लोग बोलते हैं। इस अंचल की भाषायी सीमाएँ बुंदेली, मालवी और राजस्थानी से मिली हुई हैं। इस कारण बोलियों में एकरूपता की बजाय, विविधता है। श्योपुर, शिवपुरी और मुरैना का पश्चिमी व उत्तरी सीमांत दतिया, गुना, अशोकनगर और शिवपुरी जिले की करैरा व पिछोर तहसीलों का पूर्वी सीमांत बुंदेली, गुना जिले की चांचौड़ा व मक्सूदनगढ़ तहसीलों का दक्षिणी सीमांत मालवी बोलियों का संगम है।

मुरैना, श्योपुर, गुना और अशोकनगर में जो सहरिया बहुल इलाके हैं, उनके यदि सीमांत ग्रामों को छोड़ दिया जाए तो बैयर-बानी बोली आज भी अपने मूल रूप में प्रचलन में है। इस बोली में कहना और रहना के स्थान पर केना, केती, रेत, रेती जैसी क्रियाएँ बोली के रूप में व्यवहृत हैं। 'हमरी' 'तुमरी' जैसे सर्वनाम रूप भी बैयर-बानी बोली के रूप से प्रभावित हैं। गुना, शिवपुरी और इन जिलों के रहने वाले सहरियों के वाक्यों में बोली रूप कुछ इस तरह प्रयोग में लाए जाते हैं, नई चइये। बस्स। बातें कल्लै। गरमी लग रई। चल रइये कै नईं। चल रयौ कै नईं। टूट जै बेटा। जई पै धल्लै। ऐं। पकल्लै। ऊँ। आ जैं। कां जातै। तुमाई। निबट गऔ। का बोलोतौ। आंगे जा रये। कैई बेर आओ हौं। हमें उल्टी होत। फसल कितके निकरे। मुकतई निकरे। अपईं तौ देख लो। आदत पर गईं। परेज करबौ तौ जरूरी है। लरका।

देश की आजादी के बाद लोगों का एक स्थान से दूसरे स्थान तक आवागमन बढ़ा है। आजीविका के लिए भी सहरिया चैत काटने दूर-दूर तक जाने लगे हैं। शिक्षा में खड़ी बोली का ही प्रयोग चलने से भी स्थानीय बोलियाँ प्रभावित हुई हैं। इधर संचार के उपकरण मनोरंजन से लेकर संदेश व संवाद संप्रेषण के लिए आवश्यक हुए हैं, तब से बैयर-बानी बोली का रूप हिंदी और अंग्रेजी से प्रभावित हुआ है। इसलिए बोली का मूल रूप परिवर्तित होने के साथ उसमें हिंदी व अंग्रेजी के आमतौर से प्रचलन में आने वाले शब्दों का सम्मिश्रण तेजी से हो रहा है। बोलियों के इस रूप परिवर्तन को ही इंगित करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा है, 'बोली की सीमाएँ अचल और सनातन नहीं होतीं।' गोया इस कारण ही इनके व्यवहार क्षेत्र आवश्यकता और संपर्क के आधार पर घटते व बढ़ते रहते हैं। बोली की विकास-यात्रा व्यक्ति से शुरू होकर समाज तक पहुँचती है। संवाद के परस्पर आदान-प्रदान से बोलियाँ एक-दूसरे के निकट आती हैं। फलस्वरूप बोली से ही अनेक संकुलों, क्षेत्रों, प्रांतरों और द्वीपों के भौगोलिक अस्तित्व की पहचान होती है। भारत के तो अनेक राज्यों की सीमा का विभाजन बोली और भाषा के आधार पर ही हुआ है। ग्वालियर अंचल में आने वाले बोलीगत धारों में एक का प्रभाव दूसरे पर हुआ है। यह प्रभाव सूक्ष्म-अतिसूक्ष्म ध्वनियों से लेकर मुहावरों, कहावतों व लोकोक्तियों में भी सुरक्षित है।

धार मसलन जातीय या क्षेत्रीय आधार पर वर्गीकृत बोलियाँ भले ही सहरिया समाज में सर्वाधिक बोली जाती हों, किंतु इनकी पहचान उच्च या सवर्ण जातियों के जातिसूचक शब्दों से की जाती है। जैसे, कछवाय-धार, राजपूत धार, भदावर धार, जटवारी धार, तंवर धार, सिकरवार धार, इत्यादि बैयर-बानी के

अलाव बोली के रूपों में पवांरी, तंवरधारी, रांकड़, गुअर आदि सहरियों के साथ-साथ अन्य ग्रामीण भी अपनाए हुए हैं। इस अंचल में बोली और भाषा के रूप भले ही भिन्न व अनेक हों, किंतु ये सभी लिखी देवनागरी लिपि में ही जाती हैं। वर्ण-मूलक देवनागरी संसार की प्राचीनतम लिपियों में से एक है। दुनिया की आदि भाषा संस्कृत की लिपि भी देवनागरी है।

ग्वालियर-चंबल अंचल की गाँव-गाँव में बोली जाने वाली बोलियों पर आधिकारिक सर्वेक्षण का काम डॉ. कामिनी ने 'बुंदेली-भाषी क्षेत्र के स्थानों अभिधानों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन' डॉ. सीताकिशोर खरे ने 'ग्वालियर संभाग में व्यवहृत बोली रूपों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन' डॉ. बाबूलाल जैन ने 'गुना जिले की ग्राम्य जीवन शब्दावली' और डॉ. कृष्णलाल हंस ने 'बुंदेली और उसके क्षेत्रीय रूप' पुस्तकों में बड़े ही विशद और वैज्ञानिक ढंग से किया है। डॉ. हरिहर निवास द्विवेद्वी ने 'मध्य-देशीय भाषा ग्वालियरी' पुस्तक लिखकर ग्वालियर और इस अंचल की भाषा व बोलियों को ग्वालियरी नाम दिया है। हालाँकि इस भाषायी विश्लेषण में अनेक सरोकार आंचलिक बोलियों की बनिस्बत इस क्षेत्र में लिखी गई साहित्यिक कृतियाँ रही हैं। इस भाषा का उन्होंने विष्णुदास को प्रमुख कवि माना है।

इन भाषा और बोलियों के साथ सबसे बड़ा संकट यह है कि ये खड़ी बोली में विलोपीकरण के चलते लुप्त हो रही हैं। बैयर-बानी जो सहरियों व अन्य ग्रामीणों में व्यवहृत प्रमुख बोली है, उसमें रचित कोई साहित्यिक कृति अब तक देखने-सुनने में नहीं आई है। सहरियों समेत अन्य ग्रामीणों में जो लोक-गीत प्रचलन में हैं, उन पर बुंदेली का जबरदस्त प्रभाव है। यह बोली जिस अवस्था में जितने लोगों द्वारा बोली जा रही है, उन्हीं के पास थाती के रूप में सुरक्षित है। इसे बोलने वाले लोग तो बड़ी संख्या में हैं, लेकिन उनके 'बोआ' और 'बोरो' की तरह निधन के बाद बोली के ही लुप्त होने का संकट नहीं है। अलबत्ता जिस तरह बैयर-बानी में भाषाई संक्रमण हो रहा है, उससे जरूर यह बोली रूप बदलकर कालांतर में बिला सकती है।

संपर्क : शिवपुरी (म.प्र.)
मो. 9425488224

प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल

काले पानी का देवता

मेरी स्नेह की झोली में कुछ ऐसे लोग हैं, जिनका स्नेहाग्रह टाल पाना मेरे बस में है ही नहीं। स्नेह के इन्हीं पुजारियों में हिंदी के अनन्य सेवक डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी हैं। श्री त्रिपाठी जी का आग्रह रहा कि मैं अंडमान पर एक निबंध उन्हें दूँ। अंडमान जिसे कभी 'काला पानी' कहा जाता था, मेरा दो बार जाना हुआ। एक बार साहित्य अकादमी दिल्ली की संगोष्ठी में और दूसरी बार अखिल भारतीय साहित्य परिषद की साहित्यिक यात्रा पर। पहली बार तीन दिन रहना हुआ और दूसरी बार नौ दिन। यह दूसरी यात्रा भी नौ दिन चले अढ़ाई कोस की रही। कारण कि अंडमान का भूगोल भले ही 'अंड' के मान का हो परंतु उसकी संस्कृति समुद्र की तरह गहरी है। उसी समुद्र से प्रतिबिंबित भी होती है। इसे देखने की आँख जैसी होगी, यह वैसा ही दिखेगा। जब दूसरी बार जाना हुआ, तब मैंने देश के अन्य स्थानों से आए यात्रियों से कौतूहलवश यह जानना चाहा कि वे यहाँ क्यों आए हैं? इस पर सभी का एक ही उत्तर था कि यहाँ का सुंदर समुद्र और यहाँ का बीच देखने के लिए हम लोग आए हुए हैं। मैं यात्रियों से अपेक्षा कर रहा था, कि इनमें से कोई तो कहता कि मैं वीर सावरकर की शौर्यगाथा को जानने के लिए आया हूँ। मेरे ध्यान में अटल जी के एक व्याख्यान की भी स्मृति थी, जिसमें उन्होंने सावरकर को जानने-समझने की एक अपूर्व दृष्टि दी है। उन्होंने कहा कि सावरकर माने तेज, सावरकर माने त्याग, सावरकर माने तप, सावरकर माने तत्त्व, सावरकर माने तर्क, सावरकर माने तीर, सावरकर माने तलवार, सावरकर माने तिलमिलाहट, सावरकर माने तितीक्षा, सावरकर माने तीखापन, सावरकर माने शिखर।

बाजपेई जी के द्वारा सावरकर को दिए गए ये विशेषण बहुत कुछ कह जाते हैं, फिर सावरकर के लिए ये शब्द ऐसा पराडाइम नहीं बना पाते, जिसमें वे पूरे-पूरे आ जाएँ, तो सिर टकराने का खतरा बना हुआ है। कारण कि ये सारे विशेषण किसी मनुष्य के तो हो सकते हैं, परंतु महर्षि अरविंद की शब्दावली में अतिमानस दैवी शक्ति संपन्न व्यक्ति के नहीं हो सकते। इसीलिए 'काले पानी का देवता' यह नाम लेना पड़ा। तो मैं बात कर रहा था उस अंडमान की जिसे पहले 'काला पानी' कहा जाता था। जब किसी को कड़ी यातना देनी होती थी, तो उसे 'काला पानी' अर्थात् अंडमान निकोबार द्वीप के सेल्युलर जेल भेजा जाता था। भारत ही नहीं अन्य उपनिवेशों से भी यहाँ कैदी भेजे जाते थे। मैंने अपनी दो बार की यात्रा में उस जेल और उससे जुड़े कैदियों को दी जाने वाली यातनाओं को देखा और पढ़ा तो स्तब्ध रह गया कि क्या इतना अमानवी हुआ जा सकता है? यह मैं सोच भी नहीं सकता था। कुल 698 कोठरी वाले जेल की कोठरी अर्थात् एक कोठरी और उसके आगे एक और जिसे हम गृर्भगृह कह सकते हैं, उसमें विराजमान देवता का नाम था 'विनायक दामोदार सावरकर', जो बाद में वीर सावरकर के नाम से विख्यात हुए।

ब्रिटिश शासन के विरुद्ध संघर्ष करने वाले चाफेकर बंधुओं की फाँसी से विचलित होकर 15 वर्षीय बालक विनायक सावरकर ने अपने घर में रखी अष्टभुजा देवी माँ के सामने प्रतिज्ञा की, कि मैं अपने देश की आजादी के लिए संघर्ष करूँगा। मैं सशस्त्र क्रांति का ध्वज बुलंद करूँगा। इंग्लैंड में बैरिस्टर की पढ़ाई के साथ-साथ विनायक ने भारतीय क्रांतिकारियों से संपर्क सहयोग निरंतर जारी रखा। इससे कुपित होकर ब्रिटेन की सरकार ने उन्हें बैरिस्टर की उपाधि प्रदान नहीं की और 8 जुलाई 1910 ईस्वी में वीर सावरकर को कैद करके मोरिया जलयान से भारत भेजने की सजा सुनाई। यह बड़ा चर्चित प्रसंग है कि फ्रांस के मोर्सेलिज बंदरगाह के समीप आते ही सावरकर ने समुद्र में छलाँग लगाई और पाँच मील की दूरी तैरकर पार की। वहाँ उन्होंने अपने को फ्रांस की पुलिस के हवाले कर दिया। विश्व भर के समाचार पत्रों में इस साहसपूर्ण कार्य का विवरण आया। फ्रांस की भूमि पर सावरकर की गिरफ्तारी अंतराष्ट्रीय कानून के विरुद्ध थी। श्री श्यामकृष्ण वर्मा ने देश के अंतराष्ट्रीय न्यायालय में इस मामले को उपस्थित किया। किंतु ब्रिटिश प्रभाव से प्रभावित होने के कारण मामला असफल रहा। परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश सरकार ने सावरकर को राजद्रोह के आरोप में 50 वर्ष के कारावास की सजा देकर काला पानी में भेज दिया। सेल्यूलर जेल का जेलर डेविड बैरी स्वयं को यमराज का अवतार कहता था। बेंत मार-मार कर क्रांतिकारियों की चमड़ी उधेड़ने में उसे आनंद आता था। अंडमान से रिहाई के बाद रत्नागिरि में सावरकर जी की नजरबंदी गाँधी जी की हत्या के झूठे आरोप तथा नेहरू सरकार द्वारा उनकी की गई उपेक्षा एक बहुत बड़ी त्रासदी थी। नेहरू की सरकार ने तो उन्हें स्वतंत्रता सेनानी मानने से इनकार कर दिया था। फिर भी सावरकर जी भारतीय युवकों के हृदय पटल पर छाए रहे।

आज भी भारतीय जनमानस में वीर सावरकर को महान तत्त्वज्ञानी, योगी, मृत्युंजय, भारत का उस्ताद, बैरिस्टर, युग प्रवर्तक, देशभक्त, आधुनिक शंकराचार्य, कथा कादंबरी का समाज सुधारक, इतिहासकार, निबंधकार, संस्कृतिवेत्ता, मकान चित्रकार, अभिनव भारत संगठन के संस्थापक, अष्टपहलू तारा, महान मानवतावादी, प्रखर राष्ट्रवादी और क्रांतिकारी आदि नामों से जाना जाता है। वस्तुतः ये उनके नाम नहीं उनके काम हैं। उन्होंने त्यागपूर्वक कार्य किया है। वहाँ पूछने पर ज्ञात हुआ कि अंडमान मलय भाषा के 'हंदुमान' शब्द का अपभ्रंश है। ऐसी जनश्रुति मिलती है कि त्रेता युग में रावण द्वारा सीता हरण के पश्चात् हनुमान को उनकी खोज करते हुए लोगों द्वारा अंडमान निकोबार द्वीप समूह में भ्रमण करते देखा था। तभी से इस क्षेत्र को मलाई लोग 'हंदुमान' कहने लगे, जो आज परिवर्तित होकर अंडमान हो गया। निकोबार शब्द भी मलय भाषा का है। इसका अर्थ है नग्न लोगों का द्वीप। यह बहुत आकर्षक द्वीप है। जितने बार जाइए कुछ नया सा लगेगा। परंतु कभी काला पानी कहा जाने वाला यह द्वीप अनेक सावरकरों की कहानी कहने के लिए तैयार है। फिर भी हमारी दृष्टि वहाँ इस देवता पर जाती कहाँ है? हमारे लोग कितने गिर सकते हैं, मैं तो उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। गौरतलब है कि काले पानी में इस देवता की नामपट्टिका लगी हुई थी, परंतु पूर्व केंद्रीय मंत्री मणिशंकर अय्यर द्वारा हटवा दी गई। इससे लगता है कि अभी भी उस देवता से नफरत करने वाले मीर जाफरों की कमी नहीं है।

सेल्यूलर जेल की विजिटर बुक में मणिशंकर के इस कुकृत्य लेख को पढ़कर मुझे ऐसा क्रोध आया कि उस देवता से और अधिक स्नेह हो गया। सावरकर नाम अब व्यक्तिवाची से जातिवाची संज्ञा हो

गया है। इतिहास हमें बताता है कि 1844 से 1849 ई. में क्रमशः दो-दो जलयानों के अंडमान-निकोबार द्वीप समूह में दुर्घटनाग्रस्त होने तथा मलाई लोगों द्वारा अंडमान निकोबार द्वीप की जातियों के लोगों को गुलाम बनाकर ले जाने की खबरों को सुनकर ईस्ट इंडिया कंपनी के निदेशक मंडल ने 1857 के ब्रिटिश शासन विरोधी खतरनाक क्रांतिकारियों को भारत से दूर करने के लिए एक बार फिर वहाँ बस्ती बनाने का निर्णय लिया और 10 मार्च 1858 को डॉ जे.पी. वाकर के साथ 200 क्रांतिकारियों को पोर्ट ब्लेयर भेजा। वहाँ जाने पर ज्ञात हुआ कि 1864 ई. में वाइपर द्वीप पर जेल का निर्माण कार्य प्रारंभ हुआ। यहाँ के राजनीतिक बंदियों के साथ किया जाने वाला कृत्य किसी भी देश भक्त को स्तबद्ध कर देगा। बंदियों को चेन गैंग की सजा के रूप में एक साथ लोहे की मोटी चेन से बाँधकर काम कराया जाता और उसी स्थिति में सुलाया जाता था ऐसी सजा पाने वालों में आम भारतीयों के साथ-साथ छोटी-मोटी रियासतों के राजा, सामंत, नवाब और बुद्धिजीवी भी थे। 1857 ई. में राजा जगन्नाथपुरी, मौलाना फजल हक खैराबादी जैसे कई महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों को जे.पी. वाकर की क्रूरता का सामना करना पड़ा और कइयों को अपनी जान गँवानी पड़ी। सन् 1879 से 1892 तक इस द्वीप समूह पर कर्नल कैडर के कार्यकाल में भारतीय राजनीतिक बंदियों से जंगल साफ कराना, चाय, कॉफी, नारियल, नींबू, इमली, रबर आदि के बाग लगवाना, भेड़ों के लिए जबूनी घास लगवाना, समुद्र तटीय दलदल में मिट्टी भरकर सपाट मैदान तैयार करना, आवासीय मकानों का निर्माण आदि कार्य कराए गए। सेटलमेंट के सभी विभागों को टेलीफोन से जोड़ा गया और विभिन्न टापुओं के बीच सिंग्नल की व्यवस्था की गई थी।

सेल्यूलर जेल जो पोर्ट ब्लेयर शहर के अटलांटा हाइट्स पर स्थित है। वह अंग्रेजों द्वारा भारत के सेनानियों पर किए गए अत्याचारों का साक्षी है। इसका निर्माण अंग्रजों ने भारतीय राजनीतिक बंदियों से ही करवाया था।

मैं जब दूसरी बार वहाँ गया तो मन में अनेक जिज्ञासाएँ थीं। इन जिज्ञासाओं के शमन के लिए मैं इस द्वीप के चप्पे-चप्पे में कई दिनों तक भटकता रहा। आज मेरे अंदर वहाँ की अनेक छवियाँ हैं, इन पर मैं लिखूँ तो पूरी पुस्तक बन सकती है, परंतु मेरा मन पूरी तरह से कहीं भी रम नहीं पाया। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि मेरे अंदर सौंदर्यबोध है ही नहीं, अपितु वहाँ सेल्यूलर जेल-परिसर में जो क्रांतिकारियों एवं शहीदों की परिचय पट्टिका है, वहाँ पर जाकर मैं थम गया। पढ़ने के बाद मुझे तत्कालीन शासन की पैशाचिक क्रूरता पर क्रोध आने लगा। मैं उन अमर शहीदों के प्रति श्रद्धा से विभोर हो उठा। जहाँ भी जाती मेरा मन शहीदों की परिचय बीथिका में जाकर टिक जाता। वहाँ शेर अली, पंडित परमानंद, बाबा मान सिंह, क्रांतिकारी बच्चा नानीगोपाल, अमर शहीद महावीर सिंह, फील्ड मार्शल लद्दाराम, क्रांतिवीर प्रोफेसर भाई परमानंद और वीर सावरकर को पढ़ डाला। मुझे ऐसा लगा इस मंदिर में तो कई देवता हैं, परंतु गर्भ गृह में जो देवता हैं उसका नाम है 'वीर सावरकर'। 'काले पानी के देवता' का नाम दिया।

उन्हें इस महान देशभक्त क्रांतिकारी का पूरा नाम विनायक दामोदर सावरकर है। इनका जन्म 28 मई 1883 ई. में नासिक के भगुर गाँव में हुआ था। एक बार मैं अपनी श्रीमती विद्या शुक्ला के साथ वहाँ गया था। उस दिन साप्ताहिक अवकाश होने के कारण स्मारक भवन बंद था। फिर भी बाहर के दरवाजे पर हम दोनों माथा टेक कर वापस आ गए। सावरकर जी का पूरा परिवार धार्मिक और देशभक्त था। बाबा

राव दामोदर सावरकर और नारायण सावरकर तीनों भाइयों ने देश के लिए सब कुछ अर्पण किया। वे लोकमान्य तिलक के अनुयाई थे। उन्होंने इंग्लैंड में 'अभिनव भारत' नाम की एक संस्था का निर्माण किया। वीर सावरकर ने क्रांतिकारी मदनलाल ढींगरा द्वारा अंग्रेज अफसर कर्नल वाईली की हत्या को सही कदम बताया। उन्होंने सन् 1857 में हुए संग्राम पर भारतीयों का अंग्रेजों के विरुद्ध प्रथम संग्राम के रूप में अपनी पुस्तक लिखी, पर अंग्रेजी शासन की कठोर नीति के कारण वह उसे प्रकाशित नहीं कर सके और उन्हें बंदी बना लिया गया।

सन् 1905 में तत्कालीन अंग्रेज भारत के गवर्नर लॉर्ड कर्जन के समय बंगाल का विभाजन किया गया जिस के विरोध में कोलकाता और पुणे स्वदेशी और विदेशी वस्तुओं का आंदोलन तेज हुआ। सावरकर जी ने वस्तुओं की होली जलाने का आयोजन किया, जिसका असर अंग्रेजी शासन पर पड़ा। तब सावरकर जी को दंडित करते हुए उन्हें कॉलेज से निकाल दिया गया। दंडित होने के बाद मात्र 14 वर्ष की अवस्था में उन्होंने प्रतिज्ञा की कि मैं देश के अंदर सशस्त्र क्रांति का संचार करूँगा। मैं मराठा अपने जीवन की अंतिम साँस तक देश की स्वतंत्रता हासिल करने के लिए देश के भीतर लड़ता रहूँगा, चाहे इसमें मैं मर जाऊँ। तब से उन्होंने इंग्लैंड में देश में आजादी के लिए बराबर सक्रिय प्रयत्न किया। वे अच्छ क्रांतिकारी लेखक, खिलाड़ी, भाषा-विद्वान और कवि थे। वे साहित्यकारों और नाटककारों में अग्रगण्य के रूप में जाने जाते हैं। सावरकर जी विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। उनके इरादे पक्के और नीति स्पष्ट थी। इसलिए आधुनिक युवा वर्ग उनकी ओर आकृष्ट हुआ। वे बहुत चिंतनशील और अभ्यासक थे। उन्होंने ब्रिटिश नीति का गहन अध्ययन किया। छत्रपति शिवाजी छात्रवृत्ति के लिए सावरकर को चुना गया था। तब सावरकर ने अपनी छात्रवृत्ति में स्पष्ट लिखा था कि 'मैं अपने देश की स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता को अपने अंतिम श्वास तक देखूँगा।' अंग्रेजी शासन के दौरान वंदे मातरम् के जयघोष का नारा लगाना भारतीयों के लिए बहुत बड़ा जुर्म था। सावरकर जी ने लंदन में आयोजित कार्यक्रम के आमंत्रण कार्ड पर वंदे मातरम् शब्द का प्रयोग किया। यह कार्यक्रम सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के उपलक्ष्य में था। इस कार्यक्रम में उपस्थित भारतीयों द्वारा 1857 के स्वतंत्रता सेनानी झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई, नाना साहब, मौलाना अहमद उल्ला, सम्राट बहादुरशाह और जमींदार बाबू कुँवर सिंह को याद किया गया और सभी ने अपनी भावपूर्ण श्रद्धांजलि उन्हें अर्पित की। वीर सावरकर को आजन्म कारावास की सजा हुई थी। सन् 1910 में गोगरी जेल (मुंबई) और दूसरी आजन्म सजा अंडमान जेल, रत्नागिरी जेल के लिए हुई थी। वे जब एस.एस. महाराजा जलयान से जुलाई 1911 में अंडमान पहुँचे उस समय काला पानी जेल की सजा और यातनाएँ दुनियाभर में प्रसिद्ध थीं। सावरकर ने अपने 10 साल की सजा के दौरान कैदियों को पढ़ाया, समानता का पाठ सिखाया और हिंदी वाचनालय शुरू किया उन्होंने धर्म शुद्धीकरण का भी कार्य किया। जेल की दीवारों पर कमला काव्य की रचना की।

सावरकर का एक बड़ा साहसिक संवाद है-जब उन्हें 50 साल की सजा हुई और तब तत्कालीन जेल के खूँखार जेलर डेविड बैरी ने सावरकर को चिढ़ाते हुए कहा कि क्या 'तुम आजादी देखने के लिए जिंदा रहोगे?' इस पर वीर सावरकर ने कहा कि 'मिस्टर बैरी क्या तुम्हें लगता है कि तुम्हारी सरकार 50 साल तक हमारे देश में रहेगी।'

काले पानी के कठोर दंड के दौरान भीषण शारीरिक और मानसिक यातना सहते हुए उन्होंने अपनी

प्रतिष्ठा की ज्योति को जलाए रखा। उन्होंने 11 हजार पंक्तियों की काव्य रचना को पूरा किया। लेखनी के अभाव में उन्होंने जेल की दीवारों पर कीलों से उत्कीर्ण किया और कंठस्थ करने की चेष्टा की। हिंदुत्व जाति, भेद रहित समाज, हिंदू राष्ट्र, अखंड भारत, सैनिकीकरण, विज्ञाननिष्ठा तथा स्वतंत्रता प्रेम के तेजस्वी महामंत्र सावरकर जी ने इस देश को प्रदान किए।

10 मई 1937 को रत्नागिरि जेल से बिना शर्त सावरकर मुक्त हुए, उन्होंने अपनी 27 साल की सजा पूर्ण की। अंडमान तथा निकोबार की बेमिसाल सुंदरता और भारत की सुरक्षा के लिए अपने विचार व्यक्त किए कि – 'अंडमान तथा निकोबार दक्षिण पूर्व एशिया के लिए बार का काम करता है।'

इसलिए यहाँ भारत की जल सेना, वायु सेना और थलसेना अधिक से अधिक संख्या में तैनात रहना चाहिए। आज हर भारतीय को यह देखकर गर्व होगा कि हमारे द्वीप इस सेना से परिपूर्ण हैं। आज द्वीपों में संयुक्त कमांड कार्यरत है। ऐसे महान दूर दृष्टा को प्रत्येक भारतीय का नमन करता है। काले पानी के इस देवता का स्मरण करते रहना हमारी परंपरा का शुक्ल पक्ष है।

जनमानस में काला पानी का अर्थ है देश निकाला। कालापानी शब्द अंडमान बंदी उपनिवेश के लिए 'देश निकाला' देने का पर्याय है। काला पानी का भाव सांस्कृतिक शब्द 'काल' से बना है, जिसका अर्थ होता है 'समय' अथवा 'मत्यु'। ताप्पर्य यह है कि 'कालापानी' शब्द का अर्थ 'मृत्युजल' या 'मृत्यु के स्थान' से है, जहाँ से कोई वापस नहीं आता। 'देश निकाला' के लिए 'काला पानी' का अर्थ बचे हुए जीवन के लिए कठोर और अमानवीय यातनाएँ सहना था। 'कालापानी' अर्थात् स्वतंत्रता सेनानियों को अनकही यातनाओं और तकलीफों का सामना करने के लिए जीवित नरक में भेजना, जो मौत की सजा से भी बदतर था।

अपनों से दूर भेजने का अर्थ होता है, वही यात्रा जो कि मृत्यु की घड़ी तक ले जाती हो। बंदी हमेशा के लिए उसके समाज से दूर हो जाता है। उसे वहाँ भेज दिया जाता है, जहाँ लोग रहते हैं, परंतु अदृश्य लोक है, अति विस्मयकारी तत्त्व हैं। जिनके बारे में वह कुछ नहीं जानता है और जहाँ से वह कभी वापस नहीं आता है।

जिन भारतीय क्रांतिकारियों और स्वतंत्रता सेनानियों को कठोर सजा देने के लिए 'कालापानी' बनाया गया, परंतु बदले में उन्होंने इस द्वीप समूह को स्वर्ग बना दिया। वास्तव में यह द्वीप समूह हमारे स्वाधीनता संघर्ष की महान गाथा का प्रतिनिधित्व करता है। भयानक कहा जाने वाला काला पानी आज एक तीर्थ स्थल है और इसके देवता का नाम है– 'वीर सावरकर'।

इस देवता ने जो कविताएँ , निबंध, संस्मरण और अन्य प्रकार का साहित्यिक लेखन और संपादन किया वह हमारे साहित्य की अमूल्य धरोहर है। हिंदी और राष्ट्र के प्रति उनकी निष्ठा अपूर्व 'न भूतो न भविष्यति' रही है।

स्वतंत्र भारत में जो स्थान और सम्मान उनके लिए अपेक्षित था, वह आज भी चिर प्रतिक्षित बना हुआ है। उनका लिखा हुआ एक–एक शब्द और कहा हुआ एक–एक वाक्य राष्ट्रार्चन की संहिता बन पड़ा है। उनकी कलम ने साहित्य और भाषा एवं देश का भाग्य लिखा है। उनकी वही चेतना शब्द–ब्रह्म बनकर आज साकार हो रही है। धारा 370 का हटना और उसके ठीक 1 वर्ष बाद 5 अगस्त 2020 को राम मंदिर का शिलान्यास जैसे कार्य और जो शेष कार्य आगे होंगे। उसमें काले पानी के इस देवता और अन्य देवी–देवताओं के चैतन्य के

प्रति हमारी स्वीकृति राष्ट्र के प्रति कृतज्ञता का भाव कहा जाएगा। और यह 'कृतज्ञता' हमारी संस्कृति की कुक्षि से उद्भूत एक महत भाव को व्यक्त करने वाला शब्द है। जो देश के लिए सर्वार्पण कर गए। अपने त्याग, तपस्या और बलिदान की धरोहर हमें सौंप गए। उनके प्रति हमारा क्या कर्तव्य बनता है? इस पर विचार करना, उससे प्रेरणा लेना और कृतज्ञता ज्ञापित करना हमारा कर्तव्य बन जाता है। जो देश के लिए मरे, उस पर पूरा देश मरे, यह हमारा स्वभाव रहा है, और यही है भारतीयता की असली पहचान और हमारा सांस्कृतिक बोध। इस महाबोध अथवा महाभाव की नैरंतर्यता बनी रहे और इसके लिए कालपानी के देवता का स्मरण पीढ़ी दर पीढ़ी बना रहे, ऐसा प्रयास करना चाहिए। श्रद्धा समूह का विषय भी तभी बन पाती है जब श्रद्धेय का समग्र कर्तृत्त्व समाज-सापेक्ष हो। तब वह समूह का विषय बनकर ही चरितार्थ होती है। श्रद्धेय की धन्यता इसी में है कि उस जैसे व्यक्तित्व के होने की संभावना समाज में बनाए रखें। यही कारण है कि भारत माँ समय-समय पर हमारे बीच में ऐसी ही सज्जन शक्तियों की उपस्थिति कराती रही। कालेपानी के इस देवता के नाम चार 'प्रथम' का गौरव अंकित है। पहला - प्रथम भारतीय नागरिक, जिन पर हेग के अंतरराष्ट्रीय न्यायालय में मुकदमा चलाया गया। दूसरा - प्रथम क्रांतिकारी, जिन्हें ब्रिटिश सरकार द्वारा दो बार आजन्म कारावास की सजा सुनाई गई। तीसरा - प्रथम साहित्यकार, जिन्होंने लेखनी और कागज से बंधित होने पर भी अंडमान जेल की दीवारों पर कीलों, काँटों और यहाँ तक कि नाखूनों से विपुल साहित्य का सृजन किया और ऐसी सहस्त्र पंक्तियों को वर्षों तक कंठस्थ कराकर अपने सहबंदियों द्वारा देशवासियों तक पहुँचाया। चौथा और अंतिम-प्रथम भारतीय लेखक, जिनकी पुस्तकें-मुद्रित एवं प्रकाशित होने से पूर्व दो-दो सरकारों ने जब्त कीं। वे जितने बड़े क्रांतिकारी थे उतने ही बड़े साहित्यकार भी थे। अंडमान एवं रत्नागिरि की काल कोठरी में रहकर 'कमला', 'गोमांतक', 'बिरहोच्छवास', 'हिंदुत्व', 'हिन्दुपदपादशाही', 'श्राप', उत्तरक्रिया और 'संन्यस्त खड्ग' आदि ग्रंथों की रचना की।

उन्हें पढ़ते हुए मुझे भागुर गाँव में जाने की इच्छा हुई। इस बार स्मारक भवन खुला मिला। मैं कुछ क्षण वहाँ शांत चित्त से बैठा रहा। मुझे वाराणसी के संकट मोचन और अरविंद आश्रम जैसी शांति की अनुभूति हुई। वहाँ प्रवीण नाम के एक सज्जन मिले। उनसे बातचीत प्रारंभ हुई। मेरी जिज्ञासा देखकर उन्होंने विस्तार से मुझे बताया। वे तीन भाई थे। बड़े भाई गणेश दामोदार सावरकर और छोटे भाई नारायण दामोदर सावरकर थे 1905 ई. में बी.ए. पास करने के बाद उन्होंने कानून की पढ़ाई प्रारंभ की। उन्हें श्री श्यामकृष्ण वर्मा ने छात्रवृत्ति दी थी। बैरिस्टरी पढ़ने के लिए वे लंदन गए। श्याम कृष्ण वर्मा भी एक कट्टर देश भक्त थे। उनका संगठन 'इंडिया हाउस' नाम से चलता था। 'इंडिया हाउस' का पूरा प्रबंध सावरकर के हाथों सौंपकर श्याम जी पेरिस चले गए। उन्होंने 'अभिनवभारत' नामक एक गुप्त संस्था की भी स्थापना की।

10 मई को ब्रिटेन में सिपाही युद्ध की विजय-प्राप्ति की प्रसन्नता में उल्लास दिवस मनाया जाता था। सन् 1857 में भारतवासियों ने स्वतंत्र होने का जो प्रयास किया था, उस प्रयास को गदर के साथ-साथ सिपाही विद्रोह भी कहा जाता था। इस अवसर पर एक नाटक खेला गया था, जिसमें रानी लक्ष्मी बाई और नाना साहेब को हत्यारा और दुष्ट के रूप से चित्रित किया था। अंग्रेजों के इस दुष्प्रचार के उत्तर में सावरकर ने 10 मई को 1857 के गदर को प्रथम स्वातंत्र्य युद्ध की संज्ञा देकर उसकी स्वर्ण-जयंती मनाने का विराट आयोजन किया। इस विराट आयोजन से अंग्रेज चौंक उठे। वे यह कल्पना भी नहीं कर सकते

थे कि सन् 1907 अर्थात् गदर के पचास वर्ष बाद भी भारत को मुक्त करने की आग भारतीयों के हृदय में धधक रही होगी। लंदन में उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्रियों का अध्ययन करने के पश्चात् वीर सावरकर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक सन् 1857 पर लिखकर तैयार की। सावरकर ने 1857 के संग्राम को प्रथम राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम की संज्ञा दी। इसका अंग्रेजी अनुवाद हालैंड से प्रकाशित हुआ। पुस्तक भारत सरकार द्वारा जप्त कर ली गई। भारत प्रवेश पर भी कड़ी रोक लगा दी गई। काँग्रेस द्वारा सत्ता ग्रहण के पूर्व तक यह पुस्तक भारत में जप्त थी। इस पुस्तक का मुद्रण सरदार भगत सिंह ने गुप्त रूप से करवाया था। लंदन में रहते हुए सावरकर ने गाँधी जी से भेंट की परंतु दोनों व्यक्तियों के विचारों में सामंजस्य स्थापित न हो सका। अहमदाबाद में तत्कालीन वायसराय लार्ड मिंटो पर बम फेंका गया। संयोग से वे बच गए। इसी अपराध में सावरकर के छोटे भाई श्री नारायण सावरकर गिरफ्तार कर लिए गए।

1911 से 1924 तक विनायक दामोदर सावरकर अंडमान में रहे। 1924 से 1937 तक रत्नागिरि में नजर बंद रहे। उनकी पूरी संपत्ति जब्त कर ली गई। 1938 से 1948 तक वे हिंदू जागरण के काम में लगे रहे। उनका दृढ़ विश्वास था कि सेना के भारतीयकरण से ही आजादी का अवसर निकट आएगा। 22 जून 1940 को सुभाष चंद्र बोस सावरकर के निवास पर उनसे मिलने गए। उन्होंने सलाह दी- 'आप जैसे पुरुषों के कारागार में बंद होने से देश को कोई लाभ न होगा। आप श्री रास बिहारी बोस की भाँति विदेश में जाकर भारतीय स्वाधीनता के लिए सशस्त्र क्रांति करें। बाद में सुभाष ने उसी अग्नि-पथ को अपनाया।'

सावरकर निरंतर साठ वर्षों तक देश की स्वाधीनता के लिए प्रयत्न करते हुए 26 फरवरी 1966 को मोक्ष प्राप्त कर गए। सामर्थ्य, संघर्ष एवं समर्पण के मूर्तिमंत प्रतीक, स्वतंत्रता, स्वाभिमान और स्वराज्य का सच्चा व्याख्याकार, त्याग, तप, सहिष्णुता और सत्य के प्रति निष्ठा रखने वाला ज्योतिस्तंभ, वाणी में ओज, लेखनी में आग, वार्तालाप में चुंबकत्व और कृति में अडिग आस्था, हर मोर्चे पर प्रखर जिजीविषा शक्ति का प्रसार, हिंदू राष्ट्र का अध्येता, बैरिस्टरी पास करने के बाद भी बैरिस्टरी की उपाधि से वंचित वीर सावरकर जन्म भूमि के सपूत थे। तिलक के मंडाले कारावास का दंड एवं चोफेकर बंधुओं के बलिदान से प्रेरित होकर उन्होंने अपने आप को स्वाधीनता के अग्नि कुंड में समर्पित कर दिया।

काल के फण पर नृत्य कर-कर जिन्होंने आजादी की मशाल जलाई, वे सावरकर कठोर कर्तव्य के धनी थे। उनमें देश को स्वतंत्र देखने की उद्दाम लालसा थी। उन्हीं के प्रेरणा से लंदन के अनेक युवा भारतीय सशस्त्र क्रांति में कूद पड़े। स्वाधीन भारत में भी उन्हें जेल यातना एवं अनेक मानसिक यंत्रणाएँ झेलनी पड़ी। वे भीष्म के समान मृत्यु-शैया पर पड़े थे। परंतु उन्हें कोई गांडीवधारी अर्जुन नहीं मिला, जो उनकी मृत्यु शैया को व्यवस्थित कर देता। कुछ आश्वस्ति देता। हाँ, अटल बिहारी जी उनके दर्शन करने गए। दोनों ने एक दूसरे को देखा-दोनों के नेत्र सजल हो गए। सावरकर बोल उठे-अगर कोई मुझे हिंदू राष्ट्र साकार करने का आश्वासन दे तो मैं कुछ वर्ष और जी सकता हूँ।

खेद एवं पश्चाताप का विषय है कि कोई उन्हें हिंदू राष्ट्र का आश्वासन न दे सका और वे चले गए। कालेपानी के इस राष्ट्र देवता पर पुष्प की अभिलाषा सार्थवती हो, ऐसी मेरी मंगलशंसा है।

संपर्क : जबलपुर (म.प्र.)
मो. 9425044685

महिमा परसाई

वसंत

आओ बहिनी!
फिर झूले डालें
ऋतु वसंत की आयी है।

खिले सुमन, मन चंचल तन
आँगन भी महकायी है।
पतझड़ की उदासीन पत्तियाँ भी
वसंत के आने से
खुलकर मुस्कायी हैं।
उस झूले पर बैठी राधा रानी
श्याम तनिक झुलायी है
ले गुलाल फिर
ओ कनुआ!
लता विशाखा घर आयी है।
मिटा वो गंगा
घाट का कोहरा
ले चल चूनर,
ओ बहिनी!
फिर से संग, कार्तिक नहाई है।
पर नहीं कदम्ब का पेड़ वहाँ
जहाँ कृष्ण मुरारी जाई है।
पर वृन्दावन की गली वही हैं
जिनमें कान्हा ने

माखन मिश्री चुराई है।
चलो पनघट पर
ओ बहिनी!
घाम अभी न आयी है
किसे पता वो साँवरे ने
फिर मटकी चिटकायी है।
चिड़िया चहकी मेरी चौखट पर
बोली, 'काकी पानी देदो
भूखी हूँ खाना भी देदो।'
गर्मी आने वाली है
भरकर जल, डालकर दाने
कहा अभी तो
वसंत ऋतु आयी है।
वृक्षों की भी मनी दीवाली
पुष्पों की भी रची रँगोली
जब नई कली खिल आयी है
आओ बहिनी!
फिर झूले डालें
ऋतु वसंत की आयी है।

भू-नभ परिणय

मेरे अधरों को छू वो खुश्बू,
अंतर्मन में अमर हो गयी,
जलधर माला से शुष्क,
माटी की तपन दूर हो गयी।
नभ भूमि के परिणय से,
जल बूँदों की जयमाल ने,
लालायित कर इस मन को,
प्रकृति का प्रकृति से,
शुभ विवाह रचा गयी।
आकाशगंगा चन्द्रमा,
ग्रह-ग्रहिकाएँ और विष्णु-रमा,
साक्षी बन इस मेल का,

ब्रह्मा के इस खेल का,
बिछड़े पंछियों को फिर मिला गयी।
पंछियों का कलरव,
मन्त्रों का अनुपम अभिनव,
ब्रह्म तात ब्रह्म विद्वान ब्रह्म ही ईश,
प्रकृति को नित दे आशीष,
सौभाग्यकांक्षा मिला वरदान,
भू-नभ मेल से सार्थक प्राण,
फिर कलिकाओं को पल्लवित कर गयी।
इंद्रजीत के बाणों का,
प्रकृति की संतानों का,
माँ धरा का हृदय चीर रही,
पर
माँ अपनी कोख न कोसती,
सन्तान कृतघ्न हो किंतु
उसके रुदन आँसू पोंछती।
उतिष्ठ जागृति,
मातृ स्नेह की एक आकृति
सँवार मातृ संतति उद्गार,
वसुंधरा की याचन पुकार।

माँ हिंदी

आज मैं उनींदी सी आँखों में
चंद सुखद सपने बुन रही थी
उन्हीं चौकस चक्षुओं में,
दिनकर की आवाज गूँज रही थी
और मुझसे कह रही थी
कहाँ है वो जिसे मैंने अपनी
रश्मिरथी में गढ़ा था,
कुरुक्षेत्र और प्रणभंग में
हृदय भी भरा था।

जब अपने प्रिय से बिछोह की
आस नित उठ रही थी
तब निराला की गंगा में मैं
प्रेम की नाव बाँध रही थी।
जब स्त्री होने पर स्वयं को
प्रफुल्लित कर रही थी
तब बीन और रागिनी बन
महादेवी हो रही थी।
जब माँ को आज रसोई में
रोटियाँ सेंकते ताक रही थी
तब चिमटा थमाकर हाथों में माँ के
प्रेमचन्द के नतमस्तक हो रही थी।
आज जब न्यूज चैनल पर
शासन प्रशासन के
हास्यास्पद खेल देख रही थी
तब मातादीन इंस्पेक्टर की
मुरीद हो रही थी और पुनः
परसाई जी को नमन कर रही थी।
जब हृदय में मचलते भावों को
कलमबद्ध कर रही थी
तब फिर एक बार मैं हिंदी हो रही थी।

ठिठक!

अँधेरी सड़कों पर,
अकेली चली जाती हूँ, लेकिन
अनजाने कदमों की आहट से
क्यों ठिठक जाती हूँ?
अंतरिक्ष तक जाने में
मैं नहीं डरती,

पर घर से निकलते ही
सहम जाती हूँ,
न जाने उस खामोशी से
क्यों ठिठक जाती हूँ?
मैं जब बेटी होती हूँ,
कोई जरा सा डाँट दे
तो पिता से शिकायत
और माँ से लिपट जाती हूँ
पर किसी अपने के ही
गंदे स्पर्श से
क्यों ठिठक जाती हूँ?
जब मेरा यौवन अपने
उत्कर्ष पर होता है
तब सैकड़ों पाबंदियों में
क्यों कैद की जाती हूँ
बेकसूर सी मैं
खुद पर गुनाहों की
कुसूरवार बन जाती हूँ।
मैं जब पत्नी होती हूँ,
तब अपने प्रेम के आलिंगन से
पूर्ण हो जाती हूँ,
पर भीड़ में किसी
जाने-अनजाने की छुअन से
क्यों ठिठक जाती हूँ?
जब मैं माँ होती हूँ,
तब अपने वात्सल्य से
संसार को तृप्त करती हूँ,
लेकिन किसी माँ की
कोख़ के लालों की,
घिनौनी नज़रों से
क्यों ठिठक जाती हूँ?
जब मैं अपने कर्तव्यों को

पूर्ण कर चुकी होती हूँ,
तब न मुझ में रूप होता है
न कोई ओज़,
पर फिर भी
कुछ जिज्ञासुओं की
तफ्तीश बन जाती हूँ,
मैं उम्र की हर सीढ़ी पर
क्यों ठिठक जाती हूँ?
जब मेरी मौत हो जाती है
तब भी मैं नोची जाती हूँ
साधारण से शरीर का हिस्सा भी
तब मेरा नहीं बचता
निर्वस्त्र चिता पर भी
निगाहों की गंध का
शिकार फिर बन जाती हूँ।
न जाने मेरे इस डर का
अंत कहाँ छिपा है?
माँ के गर्भ में?
या राख में तब्दील होती
चिता पर?

संपर्क : इटारसी (म.प्र.)
मो. 9109397990

अदिति कुमार त्रिपाठी

अर्हन्-गान

शाश्वत सत्य के ध्वजवाहक,
विचारक आत्मा की मुक्ति के।
तेरापंथी, दशम-अधिशास्ता,
'जय महाप्रज्ञ' जय भारत माता।।1।।

अभौतिक आत्मा की सत्ता के,
निरन्तरता से होकर प्रवहमान।
ऋषभ से उत्सर्जित, प्रवर्तित होकर,
रचना रची, जिन-अर्हत जन की।।2।।

चालीस की वय में देकर उपदेश,
धरा के मानवगणों को धन्यकर।
लिच्छविगण के महत-पुरुष,
महाराज वर्धमान महावीर तीर्थंकर।।3।।

निषेधकर आत्मा-परमात्मा का,
धातुज, वृक्षादि में जीव की प्रतिस्थापना।
वर्जित कर पर-पीड़ा को,
जगत में कर अहिंसा की स्थापना।।4।।

ईश्वर-क्या, कहाँ, कौन, कैसे, किसका,
वह तो मानव शक्ति की पूर्णतम अभिव्यक्ति।
भरसक निभाना धर्म को मनुष्य बन,
जीवदया, अणुव्रत, जिन धर्म ही सिखाता है।।5।।

अंतरं-बहिरंग, सर्वबंधन मुक्त,
कामनाओं-लालसाओं को विजित कर।
निर्वेयक्तिक-अभिव्यक्ति का प्रसरण,
पंच-परमेष्टि का हो सतत गान।।6।।

चर-अचर की उत्पत्ति क्या,
यह है अणुओ की जनित क्रिया-प्रतिक्रिया।
सृष्टा-नियंता के बंधन से मुक्त,
कर्म-विश्वासी, कर्मबंधन-मुक्त चिरंतनता।।7।।

सत-असत से निरासक्त होकर ही,
आत्मा की दैहिक यातना से चिरमुक्ति।
राग-द्वेष रहित, सर्वजन-हिताय,
दिव्य, ज्ञान-लाभ सम्पन्नता मत की।।8।।

स्याद्वाद-अनेकांत का सतत सिद्धांत,
अनंत-आत्मा पर पृथकशः-भासमान।
जन्म-मरण के अनंत चक्र से मुक्त,
आत्मा, अनंत बोध, ऊर्जा, स्थायित्व, आनंदसी।।9।।

संपर्क : भोपाल (म.प्र.)

जगदीश सिंह रावत

हिंदी का इंद्रधनुष

हिंदीनागरी किस द्वार पर तेरा मंगल सत्कार करूँ,
विडम्बना की चोट में कैसे तुझसे व्यवहार करूँ।
दशकों से दबा रहे हैं आँचल तेरा, कौन किस स्वार्थ में?
शुभदिवस पर तेरा किस पुष्पांजलि से रूप शृंगार करूँ।।

कहने को राजशासन की लिखित सम्प्रेषण वाहिनी हो,
दिल और देश के हिस्से में बैठी सुरभित दायिनी हो,
बिंदी मस्तक पर धारण कर, प्रकाशपुंज समुज्ज्वला हो,
लेकिन आज वर्ग विशेष के तिरस्कार से अनजानी हो।।

संस्कृति की चाहत में, दैनन्दिनी मनुज अपनाते हैं,
फिर शिक्षापटल बाद में क्यों तेरा नाम लेने से कतराते हैं।
नागरी तेरा अपमान शिक्षित वर्ग में सविशेष है,
अनपढ़ ही तेरे सम्मान में खड़ा शेष है।।

बचपन में जब तुमको मधुरस्मृति से खींचते थे?
तुतलाकर मृदुल स्वर्णिम में अ..आ 'को' ज्ञ चीखते थे।
तेरे पद करद्वय से चिह्नित कर आराम सुख पाते थे,
स्लेट पर शिरोरेखा खींचकर जब इंद्रधनुष बन जाते थे।।

धारिणी वाहिनी बना कर देश क्यों तुझको बहला रहा,
हिंदी दिवस की ओट में, आंग्ल में क्यों बिठा रहा।
हिंदीनागरी किस द्वार पर तेरा मंगल सत्कार करूँ,
हिंदी के इन्द्रधनुष किस पावस में तुझसे प्यार करूँ।।

संपर्क : श्रीगंगा नगर (राजस्थान)
मो. 9667359940

यामिनी नयन गुप्ता

प्रेम की इबारत

प्रेम जड़ नहीं होता
होता है गतिशील
स्त्री के प्रेम का तिरस्कार कर
तुम्हारा अहम् होता है तृप्त;
प्रेम खोजता है स्वाभाविक रास्ता
चल देता है आगे
पीछे रह जाती है बस एक देह,
आत्मीयता के अभाव में
रिसती जाती है एकनिष्ठा
सरक-सरक जाती है धैर्य की चादर;
आत्मबोध
निज अस्तित्व की पहचान
छोटे-छोटे संत्रास,
भीतरी द्वंद्व से उठना चाहती है वह ऊपर,
वो स्त्री जब नहीं पाती है
मन के कोने में थोड़ी सी जगह
वह जो तुम्हें यूँ ही सी दिखती है,
स्त्रियों से बतियाती हुई सी
बच्चों को बहलाती हुई सी,
भीतर ही भीतर चलती रहती है
पढ़ती रहती है प्रेम की इबारत,
गुणा-भाग रिश्तों के हो जाते हैं ऋणात्मक
जब नहीं पाती है वो स्त्री
प्रेम का प्रतिदान,
कुछ तो लो तुम अब संज्ञान
क्षितिज तक छाने दो
उसके प्रेम का वितान

पुश्तैनी

पुश्तैनी घर
बाँध लेते हैं मन
ठिठक जाते हैं देखकर कदम
याद आता है बचपन,
दीवारों में बने जँगले देख
याद आता है नानी का घर
रखतीं थीं वो वहाँ पर पानी का घड़ा
या कि बर्नियाँ अचार की;
गर्मी की दोपहरी जब
नानी-मामी करती थीं आराम
हम सब भाई-बहन
कटोरी में मीठे अचार की भरकर फाँकें
एक दूसरे का करते थे आतिथ्य-सत्कार
और नानी चौंक जाती थीं
जब पाती थीं साल भर चलने वाला अचार
हो गया अशेष एक गर्मी में ही,
मेरे अधरों की कोरों पर बसा है अभी तक
उस मीठे अचार का स्वाद।

या कि धाँस के पापड़ की लोइयाँ
भरी दोपहरी में गिनकर रखती थीं नानी
और हम निकालकर खा जाते थे कच्ची ही;
मैंने नहीं देखा कभी उन्हें
कम लोइयों को दोबारा गिनते हुए,
ए.सी. लगे घरों में भी वो मजा नहीं
जो था हवेलीनुमा ठेठ घरों में;
गुजरा हुआ फकत जमाना नहीं
वो था पूरा-भरपूर जीवन
अव्यक्त ही रह जाती हैं,
कुछ व्यथाएँ बिछुड़न की,
पर वक्त ने उकेर दी हैं
मन की प्रस्तर शिलाओं पर

अब न नानी रहीं न ही माँ
पर शेष हैं स्मृतियाँ उन हवेलीनुमा घरों की
और पल-पल गुजरते से हम।

माँ

क्या होता है किसी आत्मीय का
सदा के लिए
आँखों से ओझल हो जाना,
शेष रह जाती हैं बस स्मृतियाँ
अनदेखी सी डोर नेह की,
धागे ममत्व के
अश्रुपूरित नयन
रुँधे कंठ का क्रंदन
गर तुम ठहर सकतीं माँ!
तो कभी न जातीं
छुड़ाकर मुझसे यूँ अपना आँचल;
पापा बोले...
कुछ दिन रुक जाओ यहीं बिटिया!
क्या करूँ यहाँ ठहरकर भी बाबुल!
मायका तो है पर
माँ नहीं
ठंडे पड़े चूल्हे में आँच नहीं
पोहा और खीर की खुश्बू नहीं
पूजाघर तो है पर,
जलते दीपक में
तुम्हारी वात्सल्यपूर्ण निगाहों की साँच नहीं,
कैसे ठहर जाऊँ यहाँ
पल-पल याद तुम्हारी
तुम्हारा ही अक्स बसा स्मृतियों में,
क्योंकर मुझको तुमने इतना बड़ा जाना
तुम्हें अभी नहीं जाना था माँ!

संपर्क : रामपुर (उ.प्र.)
मो. 9219698120

शैलेन्द्र शरण

सच को, सच की तरह बचाने के लिये

आदमी के भीतर आदमी होना था
सच को अपने मूल में बचाना भी था

मृदंग की थाप को गति देना था
वायलिन की छड़ी से तार सप्तक तक जाना भी था
आरोह के सुरों को मंद सप्तक में ठहराना था
धड़कनों को उसी नाद से मिलाना भी था
नाभि में गमकती, गमक की गूँज को अनहद होना था

शून्य में तुम्हें साथ लेकर गम-ए-फिराक मिटाना भी था
उछाल देने थे अंजुरी भर फूल आकाश में
गले मिलना था अपने वजूद से
बच्चे के रुदन की तरह बिफर जाना था

खिले फूलों की तरह खिलखिलाना भी था
रंगीन तितलियों के साथ उड़ना था
बाँसुरी के सभी छिद्रों पर अँगुलियाँ रख
देर तक छेड़ना था तान, गले से तुम्हें पुकारना भी तो था

तुम्हारे दाहिने काँधे पर हाथ रख घूमना था पूरी दुनिया
और दुनिया से तुम्हें छिपाना भी था
लरजता गीत भीतर-भीतर गुनगुनाना था
सच को, सच की तरह बचाना भी था
कितना कठिन था उजालों में रहना।

पहली बार यह सब हुआ

पहले उसने अपने होठों पर
तर्जनी रखी
और चुप रहने का इशारा किया
दाँतों की दोनों पंक्तियाँ लगभग जुड़ी थीं
उसके होंठ हल्के से खुले
उनके बीच से ध्वनि भी हुई
शिह्यह्य शी ह्यह्य
फिर कान के पीछे अँगूठे के सहारे
कोहनी तक अपना हाथ लगाया
इशारा किया ध्यान से सुनोह्यह्य
पास ही कहीं बरसात हो रही है
इस बीच मैंने कुछ कहना चाहा
तो उसकी तर्जनी मेरे होठों पर आकर ठहर गई
आसमान में काले बादल थे
ठंडी हवा का रुख हमारी तरफ था
एकाएक झोंका आया
मिट्टी की सौंधी खुश्बू
हमारे जिगर तक उतर गई
देखते ही देखते बरखा हमें भिगो गई
पहली बार हम साथ थे
पहली बार मिट्टी से सौंधी खुशबू उठी
पहली बार ऐसी बरखा आई
पहली बार हमारे वस्त्र भीगे
पहली बार हम भीतर तक भीगे
पहली बार बरसात इतनी भली लगी
पहली बार उसने
आसमान की तरफ देखकर सिर हिलाया
पहली बार उसके बालों से मोती झरे
फिर उसे लगा कि मैं
हवा के साथ उड़कर आये
एक पत्ते की तरह उसकी गोद में गिर गया हूँ

हवा थम सी गई है
उसकी हथेली मेरी पेशानी पर है
और मैं बरखा का बादल होता जा रहा हूँ।
यह सब हुआ पहली बार उस बारिश में।

ढलान पर

साठ की उम्र तक आते-आते
पता हो गया कि दो पीढ़ियों के घनिष्ठ संबंध
तीसरी पीढ़ी तक आते-आते मर जाते हैं
आपको गढ़नी होती है
आदमीयत की नई इबारत
और आपकी संतान
व्यस्त होती है भौतिकता में
क्या यह सच नहीं कि
पाँचवी पीढ़ी तक आते-आते
बाप-दादाओं कि कमाई हुई जायदाद बिक जाती है
सातवीं पीढ़ी से
लग जाती है खानदान में सड़ाँध
रिश्तों के फोड़ों से बहने लगता है मवाद
मेरा अनुभव कहता है
कि उम्र-दराज बुजुर्ग
क्रिकेट, राजनीति और फिजूल की बातों के सहारे
सालों हिलगे रहते हैं
टूटते नहीं पके पत्तों की तरह
किन्तु समझ नहीं पाता
बीबी के जाते ही चंद महीनों में
किसी बुजुर्ग का उठ जाना...
वहीं विधवा का... सालों जी जाना
जब भी जीवन की किताब पलटी
दो चार पृष्ठों के बाद
किसी न किसी पन्ने का कोना मुड़ा हुआ मिला
मुझे अब भी नहीं पता

अपना सही-सही पता...
जिसे खोजता रहा वो अब तक नहीं मिला
साठ की उम्र में
जानना चाहता हूँ
जिंदगी के शब्दकोश में
कैसे आ गये नये-नये शब्द
जिनके अर्थ अपने-अपने स्तर पर
हैं अलग-अलग
ऐसा नहीं कि
मेरे आगे एक युग है फलक पर
फिर भी जिजीविषा
धरती में बोना चाहती है
इच्छाओं का एक बीज
जो ऊगे, पनपे और लहलहाये
वैसा ही
जैसा मैंने चाहा जीवन भर।

संपर्क : खंडवा (म.प्र.)
मो. 9098433544

विकेश कुमार बडोला

झरता अश्विन

बनकर निराली ऋतु-गति झरता अश्विन
संपन्न पितृपक्ष, पुलकित जलवायु क्षण-क्षण
नवरात्रि का आगमन हुआ
जगदात्री का उपासनोत्सव यहाँ
ध्यान धैर्य धर्म कर्म का समय अनुपम
पाप विध्वंश विनाश पर जयेश उद्गम

इस ऋतु में,
घिरे हुए क्षितिज यद्यपि चहुँदिश धुंध में
उदित तब भी स्नेह-मंजु विमल अंतर्मन में
व्याप्त धुँधीले जनजीवन का सम्मोहन
हृदय के नभ भू जीवन का वातानुकूलन

अम्बर से लेकर वसुधा पर
मंजुल बाहर-भीतर की डगर
सुदूर बहा उड़ा ले जाती किधर
धानी सुगंध का संचित संसार जिधर

मनोहरम मनहरम गीत गाती
प्रसन्नता झरती प्रफुल्लता बिखराती
अश्विन की दिव्यानुभूति शुभ यति
स्वप्न सुधा अथवा सत्य प्रतीति।

संपर्क : गढ़वाल (उत्तराखण्ड)
मो. 6398591569

जय चक्रवर्ती

औरत सब कुछ जानती

औरत ने पग-पग जिये, दुख के कठिन सवाल
औरत सब कुछ जानती, क्या पिंजरा क्या जाल।

मंदिर में आराधना, घर में अत्याचार
औरत ये दुख ओढ़कर. जाये किसके द्वार।

पुलिस, कचहरी, नौकरी, गाँव, गली, बाज़ार
औरत सबकी आँख में, एक अदद अखबार।

फाँसी थी, सल्फास था, था मिट्टी का तेल
थी औरत की बेबसी, थे अपनों के खेल।

सृजन और संघर्ष के, हैं जितने पर्याय
नारी-जीवन के सभी, अंतहीन अध्याय।

पैरों घुँघरू बाँधकर, गया बेरहम मर्द
औरत दोहराती रही, महफिल-महफिल दर्द।

फिसले किसी ढलान पर, जब औरत के पाँव
रहा तमाशा देखता, गुपचुप सारा गाँव।

औरत ने जब थाम ली, हाथों में बंदूक
सब की सब गुर्राहटें, हुईं अचानक मूक।

औरत ने हर दौर में, जिया कमीना दौर
भीतर से कुछ और था, बाहर से कुछ और।

लिखकर नारी-देह पर, एक अदद बाजार
आँखों में बाजार को, हमने लिया उतार।

जीवन में जबसे घुली, विज्ञापन की गंध
औरत पर लिखने लगी, पूँजी शोध-प्रबंध।

नारी! तुम्हें पुकारता, समय तुम्हारा मीत
निकलो पिंजरा तोड़कर, रचो मुक्ति के गीत।

रचो स्वयं का व्याकरण, भाषा, शब्द, विचार
करो स्वयं ही स्वयं का, निर्मित अब संसार।

खोजो अपने आप में, प्रतिरोधों की आग
फूटेगा फिर कंठ से, स्वयं मुक्ति का राग।

तोड़ेगी नारी स्वयं, शोषण के नख-दंत
सदियों के संताप का, हम देखेंगे अंत।

संपर्क : रायबरेली (उ.प्र.)
मो. 9839665691

विनय कुमार त्रिपाठी

कश्मीर देश का भाल

कश्मीर देश का भाल
तिलकुट हुआ है आज
मन सबका सुनो प्रसन्न
उत्फुल्लित सकल समाज
प्रतिबंध हुए हैं दूर
दूर हुआ अन्याय
देश के एका के हित
मिलकर होते सकल उपाय
वादी की पीड़ा दूर
न रहे कोई मजबूर
सब रहें सुखी धनवान
खुशियाँ होवैं भरपूर
खुशहाल रहे, खुशहाल रखे
भारत के सिर का ताज
दुश्मन की सफल हो न चाल
कश्मीर देश का भाल

भोर का यह प्रहर

प्रतिबंध की भई विदाई
कश्मीर में शुभ घड़ी आई
नई धारा के बहने की बेला
नया मौसम है, खुशियों का मेला
किसी-किसी का स्वभाव अलबेला
कोई झिक्की गुरु, कोई चेला
देखी, फौज ने धाक जमाई
कश्मीर में शुभ घड़ी आई

कुछ को लगती कहर
उत्सव की लहर
कुछ को अमावस लगे
भोर का यह प्रहर
देखी, राह धुली साफ हुई काई
कश्मीर में शुभ घड़ी आई
कहते सैना न हो
कहते चैना न हो
खूब उपद्रव मचे
लेना-देना न हो
कुढ़न हृदय में जिनके समाई
कश्मीर में शुभ घड़ी आई

नई सुबह आई

गओ अँधयारौ, भओ उजयारौ
किरण भोर की दई दिखाई
कश्मीर में नई सुबह आई
आतंक की आगी बुझेगी
खुशियों की फसल नई उगेगी
उन्नति की आशा नित जगेगी
भय की भूमिका अब भगेगी
मन की कुटिया है अब जगमगाई
किरण भोर की दई दिखाई

जो भगाए गए, वे बसेंगे
देशद्रोही जो जितने फँसेंगे
दुश्मनों पर शिकंजे कसेंगे
देशप्रेमी जो जितने हँसेंगे
जन जन ने जयकार लगाई
किरण भोर की दई दिखाई।

संपर्क : भोपाल (म.प्र.)
मो. 62658 25459

सविता दास सवि

सशक्त जो होती है स्त्री

तोड़ देती है
क्षमताओं
की सारी सीमाएँ
अपने पर जब
आती है
वृक्ष में जीवन
कंधों पर ज़िम्मेदारी
फिर स्त्री, स्त्री नहीं
वसुधा बन जाती है।

नकारती है
जब दुनिया उसको
सँवारती है तब
शिक्षा उसको
अबला, सबला
कुछ भी कहलो
अपने मन की जब
करती है
ठान ले आसमान
को छूना सच मानो
ये दुनिया हर उस
नारी से डरती है
जननी जो खुद है
कभी-कभी
कोख में ही मार

दी जाती है
कभी बोझ तो
कभी दहेज भी

समझी जाती है
पीड़ा व्यथा
भुलाकर अपनी
वह सबकी सगी
बन जाती है
समय पड़े तो
लक्ष्मी, सरस्वती
तो रौद्र में
दुर्गा, काली
भी बन जाती है
है समाज की धुरी वह
समर्पण की प्रतिमा है समझ न पाए
संकीर्ण दृष्टि के लोग
ऐसी उसकी महिमा है
नारी है तो सृष्टि है
नारी है तो राग, रंग है
सशक्त जो होती है स्त्री
सबल सभी को बनाती है
शिक्षा, संस्कार से
नए प्रजन्म को
राह वही तो
दिखलाती है।

तू जाग! तू जाग!

लो भोर हो गई है अब
रोशनी ने छेड़ा है
मधुर-मधुर राग
तू जाग! तू जाग!

अवसाद सारे भूल जा
जो रात संग है मिट गया
तमस सूर्य के समक्ष
मानती है हार
तू जाग! तू जाग!

निराश तेरा चित्त हो तो
निकट न आए कोई
जो मुस्कुरा विश्वास से
कदम बढ़ाएगा अभी
दु:ख भी मान जाए हार
तू जाग! तू जाग!

बीज सारे सपनों के
वटवृक्ष बनने वाले हैं
सींच इन्हें, पाल इन्हें
तेरे अंदर ही छिपा है
संघर्ष रूपी खाद
तू जाग! तू जाग!

व्यथा को तू बना ले ढाल
कर्म को बना रसाल
चुनौतियों को मात देगी
कठिनाइयाँ जाएँगी भाग
तू जाग! तू जाग!

संपर्क : तेजपुर शोणितपुर (असम)
मो. 8638544116

अश्वघोष

दो ग़ज़लें

पूरा मत इंसान बना तू
थोड़ा तो नादान बना तू

उसको गर तूफ़ान बना तू
तो मुझको जलयान बना तू

यदि रब है तो चेहरा दिखला
मत ख़ुद को अनजान बना तू

जिसमें केवल सच ही गूँजे
ऐसा एक जहान बना तू

मुश्किल में आसानी भरकर
हर मुश्किल आसान बना तू

दो

घुप अँधेरा छा रहा है
आदमी घबरा रहा है

रूह को ही छोड़कर अब
जिस्म भागा जा रहा है

जिन्दगी को सच के घर में
क्यों पसीना आ रहा है

जंगलों का कत्ल करके
आदमी इतरा रहा है

देखकर शृंगार उसका
आईना शरमा रहा है

संपर्क : देहरादून (उ.प्र.)

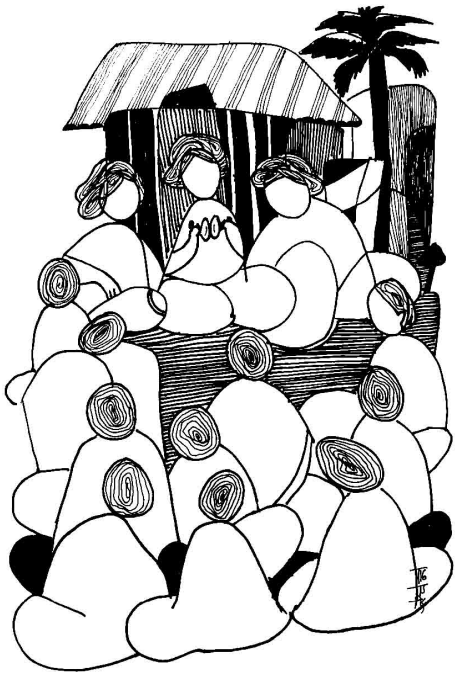

गौरी शंकर वैश्य विनम्र

जगमग दीवाली

आयी जगमग दीवाली

स्नेहभाव के दीप जलाओ
घर-बाहर प्रकाश फैलाओ
मानस में निर्मलता लाओ

आज पूर्णिमा सी सुन्दर
सजी अमावस है काली
आयी जगमग दीवाली

चलें पटाखे-फुलझड़ियाँ
दमक रहीं विद्युत लड़ियाँ
जोड़ो फिर टूटी लड़ियाँ

वहाँ भी पहुँचे उजियाला
दिखता जो कोना खाली
आयी जगमग दीवाली

सब दीपों में स्नेह भरो
झोपड़ियों का तमस हरो
पर्यावरण को स्वच्छ करो

श्रीलक्ष्मी-गणेश को पूजो
करें सभी की रखवाली
आयी जगमग दीवाली

संपर्क : लखनऊ (उ.प्र.)
मो. 9956087585

मूल : सुचेता मिश्र

अनुवाद : राजेंद्र प्रसाद मिश्र

समधर्मा

मैं यों ही नहीं आई तुम्हारे पास
बीच रास्ते में पड़ी थी खून से लथपथ लाश
उसके पास मुँह लटकाए बैठा था सूर्य
मैंने सूर्य से कहा
तुम जाओ, आसमान में लौट जाओ
वरना दुनिया में अँधेरा छा जाएगा
मैं कंधे पर लाद लूँगी यह लाश
जितना श्रद्धा और सम्मान मिला है मुझे
मनुष्य होने पर
उन सबको जलाकर दाह-संस्कार कर दूँगी इसका।

मैं यों ही नहीं आई तुम्हारे पास
पान का बुर्ज तोड़कर जब
लगा दी गई आग
उस आग के भीतर से उठा लाई हूँ मैं
एक मुड़ीमुड़ी इच्छा, एक अदद चप्पल
और इंतजार कर रही हूँ
दूसरा चप्पल सँभालकर रखे
उस आदमी का
जो क्षतिपूर्ति ठुकराकर
माँग ले जाएगा मुझसे अपना वह चप्पल
अपनी असहयोग यात्रा पूरी करने के लिए।

मैं यों ही नहीं आई तुम्हारे पास
गन्ने से शक्कर
या कपास से कपड़ा मिलने के बदले

जब गन्ना आग लगाता है किसान की मड़ैया में
और कपास उसे आत्महत्या करने को
मजबूर करता है
तब मुझे आग को हृदय में और
अपमान को बदन पर ओढ़कर
आना पड़ता है।

मैं यों ही नहीं आई तुम्हारे पास
व्यभिचार के प्रवाह में बहती
मृत मानवता को
भींचकर पकड़े हुए
मैंने पार की है नदी
विश्वास ब्लू-सीडी बनकर
बाज़ार गर्म करते समय
अपने भीतर के प्रचंड प्रेम को
मशाल की तरह जलाकर
एक श्मशान पार किया है मैंने।
मैं यों ही नहीं आई तुम्हारे पास।

छोटे लोग

छोटे लोग मौजूद रहते हैं
अपनी छोटी-छोटी पीड़ाओं के साथ
जब जैसा जरूरी होता है
वैसा ही बन जाते हैं।
पानी के वक़्त पानी
और विकार के साथ गिल्थी भर थूक।
गन्ना पेरने की मशीन में
घुस जाते हैं वे लोग
बड़े लोगों के गिलास में ड्रिंक बन जाते हैं वे
काँच की अलमारी में
खोखले गोलगप्पों जैसे पड़े रहते हैं छोटे लोग
उन्हें अपनी पसंद से सजाकर
चखना बनाते हैं भोज-भात में।

संवेदना क्या कहती है
कैसी भाषा, कैसा क्रंदन
कैसा छंद, कैसा रंग,
भीगती, विगलित होती वेदनाएँ छोटे लोगों की
कैसे बन जाती हैं हजार उपाय
बड़े लोगों के लिए
जिसे कर्ज़ में लेकर
आजीवन चुकाते रहते हैं
छोटे लोग।

भावनाओं से ऊर्जित आँखें
जीवन का रक्तक्षरा सत्य
जो छिन-छिन बदलता रहता है संघर्ष
जो देश को देता रहता है पूर्णता
और बड़े लोगों को सफलता।

छोटे लोगों के पदचिह्नों से
बन रहा है रास्ता
विधानसभा के लिए
और उसी रास्ते में खो जाता है
जिजीविषा भरा न्यूनतम सुखद सपना।

तो भी क्या छोटे लोग छोड़ देंगे
सूर्य को काँख में दबाकर उड़ने का सपना
गर्म रेगिस्तान को चूमने का सपना
बारूद हटाकर शस्य उपजाने का सपना
एक दिन धरती को
अपनी गोद में बिठा लेंगे वे
नहीं जानते ये बड़े लोग।

संपर्क : मयूरभंज (ओड़िशा)
मो. 9650990245

अरुण अर्णव खरे

कोचिंग

बड़ा लज्जित महसूस किया था उसने जब आई.आई.टी. कोचिंग के पहले टेस्ट का परिणाम आया था। छयालीस बच्चों के बीच उसका बयालीसवाँ नम्बर था। पापा-मम्मी ने जिन अपेक्षाओं के साथ उसे इतनी दूर आई.आई.टी. की कोचिंग के लिये भेजा था, उनकी उम्मीदें ढहती प्रतीत हुई थीं। कई दिन लग गए थे उसे निराशा के अँधेरे से निकलने में। मेहनत तो वह खूब करता था परन्तु जिस एकाग्रता की जरूरत ऐसी परीक्षाओं के लिए होती है वह उससे नहीं हो पा रहा था। जितना वह मन को स्थिर करने की कोशिश करता उतना ही मन भटकता हुआ छतरपुर की गलियों में पुराने दोस्तों, माँ और सांभवी के बीच ले जाता। मोबाइल पर माँ से वह रोज ही बात करता था लेकिन उन्हें कितना मिस करता है, यह कहने का साहस नहीं होता था। सांभवी। उसकी प्यारी छुटकी, कितना अर्सा बीत गया था उससे झगड़ा किए हुए- उसकी चोटी खींचकर सताए हुए- कोटा आकर उसकी हर छोटी-छोटी बात याद आती थी। वह भी तो कितना परेशान करती थी- जब भी उसके साथ चेस खेलती तो सम्भावित हार को भाँपकर हमेशा मोहरों को उछाल देती और दूर खड़ी होकर जीभ दिखाती थी। कैरम खेलते हुये भी अक्सर वह ऐसा ही करती थी।

एक बार तो सांभवी ने हद ही कर दी थी जब चेस खेलने से मना किया था तो चिढ़ कर उसने टेबल टेनिस के नए बटरफ्लाय रेकेट की रबर ही निकाल दी थी। वह कितना रोया और झगड़ा था सांभवी से- कई दिनों तक उससे बोला भी नहीं था। अब उस घटना को याद कर उसे दुख होता है। सांभवी की ऐसी कितनी ही नादानियाँ अकेले में गल-बैंया करती, कभी उसकी आँखें नम कर जातीं तो कभी होंठों पर हँसी ले आतीं। उसे लगता कि इन दो तीन माहों में एकाएक वह बहुत बड़ा हो गया है- 16 से एकदम 25 साल का। सोचता तो फिर सोचता ही रहता वह चलचित्र की भाँति अनेक चित्र उसके मन-मस्तिष्क पर उभरते चले जाते। जब याद आता कि सुबह उसका फिजिक्स का टेस्ट है तो हड़बड़ाकर उठता, मुँह पर पानी के छींटे मारता और फिर किताबों में खो जाने की कोशिश करने लगता।

दो माह बीतते-बीतते उसने अपनी रेंकिंग में कुछ सुधार कर लिया था। यह स्थिति सुखद तो नहीं थी- पर उसे आगे बढ़ाने में शक्तिवर्धक टॉनिक की तरह अवश्य थी। उसे पता था मंजिल

काफी दूर है। वह निर्धारित समय में सभी प्रश्नों को हल नहीं कर पा रहा था। समय का दबाव उसे हरा रहा था। कई प्रश्न आते हुये भी छूट जाते थे। अगले एक माह तक वह अपनी रेंकिंग में मामूली सुधार ही कर पाया। मन में डर बैठने लगा कि ऐसे तो वह पीछे छूट जाएगा। उसके साथी भी कोई मदद नहीं करते थे, वह उनका प्रतिद्वंदी जो था। कॉम्पटीशन की भावना के कारण बहुत से बच्चों की बाल-सुलभ मौलिकता खत्म हो रही थी। अधिकांश बच्चे एक-दूसरे को सहयोगी समझते ही नहीं थे। टीचर्स मदद तो करते थे परंतु अंग्रेजी में बात न कर पाने की अपनी कमजोरी के कारण वह उनसे पूछने में झिझक महसूस करता था। कहने को तो वह भी छतरपुर के एक नामी कॉन्वेंट स्कूल में पढ़ता था- पर अंग्रेजी के स्थान पर वहाँ अधिकतर पढ़ाई हिन्दी में ही होती थी। इस कारण उसकी जिज्ञासाएँ मन में ही दबी रह जाती थीं।

दोस्त बनाने में वह शुरू से ही सिलेक्टिव था। अव्वल आने वाले स्टूडेंट उसकी ओर उपेक्षित नजर से देखते थे और जो दोस्ती करना चाहते थे। उसे वे लड़के पसन्द नहीं थे। टेस्ट में सबसे फिसड्डी रहने वाले नंदन मेहरा और सुरेश जाटव अक्सर उसके आगे-पीछे घूमते थे और 'चिकने क्या हाल हैं?' कहते हुए अजीब निगाहों से देखते थे। वह यथासम्भव उनसे बचकर ही रहता।

चित्रा में उसे अपने स्वभाव के अनुरूप दोस्त मिली। उसे भी एक दोस्त की तलाश थी। वह भी देवास से कोचिंग लेने आयी थी। दोनों में शीघ्र ही गहरी दोस्ती हो गई। वह दूसरे बच्चों की तरह खुदगर्ज नहीं थी उसे उसी की तरह निश्छल और सहज स्वभाव की थी वह और अपनी माँ के साथ एक फ्लेट लेकर रहती थी।

कोचिंग क्लास में भी वह चित्रा के पास ही बैठने लगा। कई बार क्लास अनवरत रूप से छः सात घण्टे लगती और बीच में बमुश्किल बीस मिनट का ब्रेक-मिलता। चित्रा उसके साथ अपना टिफिन शेयर करती और जिद करके अपने हिस्से के ब्रेडरोल और गाजर का हलवा भी खिला देती। वह अपने में बहुत परिवर्तन अनुभव करने लगा था। घर की भी अब उतनी याद नहीं सताती थी। चित्रा की संगति में वह ज्यादा खुशमिजाज और व्यवस्थित हो गया था। वीकली-टेस्ट्स में भी परफोरमेंस सुधरता जा रहा था। चित्रा उसकी यथासम्भव मदद करती थी।

कोटा में उसका मन लगने लगा था। आंटी के यहाँ का खाना भी अब उतना तीखा नहीं लगता था। शुरू-शुरू में तो उससे वहाँ का खाना खाया ही नहीं जाता था। इतनी मिर्ची-हे राम- हर निवाले के साथ वह पानी पीता रहता था। रात में जलन होती तो जेलुसिल सीरप लेता।

दीपावली पर उसे छः दिनों की छुट्टियाँ मिली थीं। सांभवी, माँ, पापा, दादी और दोस्तों को कोटा के अनुभव सुनाने में ही सारा समय निकल गया। घर पर सभी ने उसमें बहुत परिवर्तन महसूस किया- वह बड़ा धीर-गम्भीर हो चुका था। मम्मी-पापा तो यह देखकर बहुत आश्वस्त हुए पर सांभवी को अचम्भा हुआ कि भाई अब सच में बड़ा भाई हो गया है। जब वह कोटा वापस जाने से पहले रुचिरा दीदी की शादी का कार्ड मिला। रुचिरा उसकी बुआ की लड़की थी- वह चाह कर भी उनकी शादी में शामिल नहीं हो सकता था।

वह दुखी मन से कोटा वापस लौटा तो एक और बुरी खबर ने उसे अन्दर तक हिला दिया।

उसके साथ कोचिंग में पढ़ने वाले सार्थक विश्वास ने पंखे से लटक कर जान दे दी थी। सार्थक कोटा के माहोल में स्वयं को एडजस्ट नहीं कर पा रहा था। टेस्ट में भी वह अन्तिम तीन से ऊपर नहीं उठ पा रहा था- नंदन मेहरा और सुरेश जाटव तो उससे भी नीचे रहते थे टेस्ट में- पर दोनों को कभी चिन्ताग्रस्त नहीं देखा था। हमेशा किसी न किसी के चक्कर में लगे रहते थे पर सार्थक अक्सर अकेला ही रहता था। किसी से ज्यादा बातें भी नहीं करता था। खबर सुनकर वह रोया तो नहीं लेकिन अन्दर तक हिल जरूर गया था। अपेक्षाओं से मुक्ति का क्या केवल यही एक तरीका है। पेरेण्ट्स तो भले के लिए अपने से दूर पढ़ने को भेजते हैं। यदि उसका मन यहाँ नहीं लग रहा था तो उसे अपने पेरेंट्स से बात करनी थी। वेसे तो आज हर पेरेंट्स का सपना ही अपने बच्चों को आई.आई.टी. में पढ़ाना है। पेरेंट्स भी अपने बच्चों का मन क्यूँ नहीं समझ पाते और उन्हें अपने से दूर इस कोलाहल में छोड़ जाते हैं, भटकने के लिए कितने किस्से सुने हैं उसने पिछले तीन-चार माहों में मन को झकझोर देने वाले सात-आठ बच्चों ने पिछले सत्र में अपनी जान दे दी थी, मेंस पास नहीं कर पाने के कारण, स्मिता का किस्सा तो सबसे अलग था, वह तो प्रेग्नेंट थी इसलिए उसने फाँसी लगा ली थी।

वह हर बात अपनी माँ से शेयर करता था- उनसे बात कर मन को सुकून तो मिलता ही था उसे हर मुश्किल से जीतने का साहस भी मिलता। जब भी वह इस तरह की किसी घटना के बारे में सुनता, कुछ बनने के उसके इरादे और भी मजबूत हो जाते। वह कतई कमजोर नहीं है, किसी भी स्थिति में हार नहीं मानेगा। हर स्थिति से लड़ेगा वह, वह कायर नहीं है जो भाग खड़ा होगा, सोचते हुए उसका मन आत्मविश्वास से भर जाता।

आंटी के यहाँ उसके अतिरिक्त देवांग रहता था, जो उससे दो साल सीनियर था। दो बार मेंस एग्जाम दे चुका था किन्तु एक बार भी पास नहीं हो पाया था। बड़े ही बेफिक्र किस्म का लड़का था वह, पढ़ाई को लेकर जरा भी गम्भीर नहीं दिखता था। कोचिंग के बाद रूम पर उसने देवांग को शायद ही कभी पढ़ते देखा था। जब भी वह आंटी के यहाँ देवांग से टकराता तो वह मोबाइल पर बतियाते ही दिखाई देता। वह सोचता बड़े बाप का बेटा है इसलिए मौज करने यहाँ आया है। दोनों में हाय-हैलो के अतिरिक्त ज्यादा बात भी नहीं होती थी। दोनों के नेचर में भी बहुत अन्तर था। जहाँ देवांग को फैशनेबल कपड़े पहनने और तरह-तरह के गैजेट साथ रखने का शौक था वहीं उसे इन सबसे ज्यादा सरोकार नहीं था। वह जिस काम के लिये कोटा आया था उसी में फोकस रहना चाहता था। देवांग से ही उसे पता चला था कि वह पापा-मम्मी से जिद करके अपने कुछ दोस्तों के साथ यहाँ कोचिंग के लिये आया था। उसके कुछ दोस्त जे.ई.ई. में पास होकर निकल गये थे कुछ आल इंडिया एंट्रेंस टेस्ट में सिलेक्ट हो गये और कुछ स्टेट पी.ई.टी. से इंजीनियरिंग में चले गये। उसे एक साल की और छूट मिली थी किस्मत आजमाने के लिए, इसके बाद वह चला जायेगा। क्या करेगा, तब तक निश्चित नहीं कर सका था वह। देवांग उसे किसी पहेली से कम नहीं लगता था। हर माह के पहले सप्ताह में वह आंटी से दो-तीन दिन की छुट्टियाँ लेकर अपने किसी अंकल से मिलने जाता था। जब लौटता तो उसके साथ कुछ नये कपड़े, गैजेट और कुछ गिफ्ट भी होते थे।

जब वह कोटा आया था तब माँ ने उसे बहुत सारे इंस्ट्रक्शंस दिये थे- क्या करना है और

क्या-क्या नहीं करना है। दो साल तक कोई फिल्म नहीं देखनी है, न ही क्रिकेट में समय गँवाना है- आई.पी.एल. तो कतई फॉलो नहीं करना है। टेबल-टेनिस के रेकेट को हाथ नहीं लगाना है और स्केचिंग को तो भूल ही जाना है। सुबह-शाम दूध जरूर पीना है और खाने में लापरवाही बिल्कुल नहीं करना है। बाप रे इतने इंस्ट्रक्शन एक साथ उसने सोचा था- पर माँ को उनकी सारी बातें मानने के लिए आश्वस्त किया था। टेबल-टेनिस और स्केचिंग उसके फेवरिट शौक थे। टेबल टेनिस में वह स्कूल की टीम में था और स्केचिंग में तो संभाग लेवल की स्पर्धाओं में दो बार सिल्वर मेडल जीत चुका था। माँ की आकांक्षा का उसने अब तक पूरा ध्यान रखा था और अपने शौकों को सपने पूरे होने तक तिलांजलि दे दी थी। चित्रा को गाने का शौक था। वह तो अपने साथ हारमोनियम भी लेकर आयी थी और यदा-कदा रियाज भी करती रहती थी। गाकर वह पढ़ाई के तनाव को कम करती थी और रीफ्रेश फील करती थी। जब भी वह चित्रा को गाने के लिये कहता वह उसके लिये एक ही गीत गाती थी- 'पापा कहते हैं बड़ा नाम करेगा।'

चित्रा उसे स्केचिंग के लिये प्रेरित करती थी, पर वह टाल जाता। जब एक दिन चित्रा ने उससे बहुत जिद की तो उसे मानना ही पड़ा। अगले दिन उसने चित्रा का ही स्केच बनाकर उसे गिफ्ट किया तो चित्रा की खुशी देखने लायक थी। उसकी आँखों में अजीब सी चमक उतर आयी थी- उसने भी अपने दिल में कुछ अलग सी हलचल महसूस की थी। रात में जब उसने माँ से बात की तो उन्हें सब, सब नहीं जितना जरूरी था उतना बता दिया। 'माँ, तुम नाराज मत होना प्लीज, आपसे किये प्रॉमिस को मैंने आज तोड़ दिया है। कई दिनों से स्केच बनाने का मन हो रहा था तो आज बनाया है एक स्केच- अब आगे ध्यान रखूँगा माँ।' उसे लगा था माँ नाराज होगी पर वह तो खुश हुई सुनकर - 'शानू, मेरे बच्चे, मुझे नहीं पता था तुम प्रॉमिस को लेकर इतने सीरियस होगे। मैं तो केवल यही चाहती थी कि तुम जिस काम के लिये इतनी दूर गये हो उसके उद्देश्य से नहीं भटको। क्यूँकि मैंने तुम्हें खाना-पीना भूलकर स्केचिंग में खोते देखा है। तुम तो हर काम ही उसमें डूबकर करते हो- मेरे लाल- कभी-कभी तुम स्केचिंग भी कर सकते हो और क्रिकेट भी देख सकते हो 'उसे लगा माँ का गला रुँधने लगा है और वे बोलते-बोलते रुक गई हैं।

माँ की बातों से उसे बहुत हिम्मत मिली और दिल का बोझ भी उतर गया। उत्साह में उसने वह स्केच अपनी व्हाट्सएप प्रोफाइल में लगा दिया। सांभवी का तुरन्त मेसेज आ गया - 'भैया तो तुमने यह स्केच बनाया है, कौन है यह, अभी माँ को बताती हूँ, तुम कैसी पढ़ाई कर रहे हो, सब पता लग गया है मुझे, अरे डर गये, तुम भी क्या याद करोगे भैया, नहीं बताऊँगी, दिखने में तो कोई खास नहीं है फिर तुमने इसका स्केच क्यूँ बनाया, अच्छा सबसे पहले प्रोफाइल से ये पिक हटाओ- किसी ने देख ली तो खैर नहीं तुम्हारी।'

सांभवी भी कितनी बड़ी और समझदार हो गयी है। सात-आठ महीने में ही छोटी सी गुड़िया से एकदम जिज्जी बन गयी है, कैसी होगी सांभवी, किससे लड़ती होगी, बहुत लापरवाह है वह तो, स्कूल में वह उसका ध्यान रखता था, अब कौन रखता होगा उसका ध्यान। अरे नहीं- मेरे दोस्त आबिद और नवीन तो हैं उसका ध्यान रखने के लिये। दोनों उसे छोटी बहन जैसा ही मानते हैं- सांभवी उन्हें

राखी भी बाँधती है हर साल। दोनों के बहन भी नहीं है कोई। आबिद बहुत बड़ा लगता है, दीवाली पर जब मिला था तो साले के थोड़ी-थोड़ी मूँछें भी आ गई थीं। सहसा ही उसे हँसी आ गई और उसने अपना हाथ अपने होंठों के ऊपर फेरकर देखा कहीं उसके भी तो मूँछ नहीं निकल आयीं। आबिद इस साल क्रिकेट टीम का कप्तान था। उसकी अगुआई में स्कूल ने संभागीय टूर्नामेंट भी जीता था। अपने शौक के चलते आबिद ने कॉमर्स ले लिया था।

नवीन को थियेटर का शौक था। स्कूल के नाटकों में तो वह भाग लेता ही था शहर की एकमात्र रामलीला में भी इस साल लक्ष्मण का रोल किया था। गुल दीदी के थियेटर ग्रुप से भी वह जुड़ा हुआ था। उसके पास चुटकुलों का असीमित भंडार था- तारीफ की बात यह कि उसे परिस्थिति के अनुरूप चुटकुले सुनाने की समझ भी थी। सांभवी से उसकी इस कारण कुछ ज्यादा ही घुटा करती थी। उसकी संगत में सांभवी ने भी चुटकुले नाटकीय अन्दाज में सुनाना सीख लिया था। एक बार तो स्कूल में उसने हद ही कर दी थी, एक्टीविटी के पीरियड में उसने ऐसा मजाक किया था कि सारे टीचर्स और स्टूडेंट उसी की ओर देखने लगे थे। जोक किसी ने सुनाया था पर उसने बीच में कूदकर टीचर्स की सरासर इंसल्ट कर दी थी। जो जोक सुनाया गया था ठीक ठीक तो याद नहीं पर उसमें पूछा गया था कि भैंस हमें क्या देती है? तो सांभवी चहक कर बोल पड़ी थी- 'होम वर्क', और पूरी क्लास में सन्नाटा छा गया था। मुटल्लो क्लास टीचर अपनी झेंप छुपाते हुये जबरन हँसने का प्रयास कर रही थी। बाद में सांभवी को ले जाकर उनसे माफी माँगी थी और बात आई गई हो गई थी। अब फिर सांभवी ने कुछ ऐसा-वैसा कर डाला तो! अरे नहीं करेगी वह, बहुत समझदार हो गई है, देखा नहीं किस तरह उसने चित्रा की फोटो व्हाट्सएप से हटवाई है। संतोष की गहरी साँस लेते हुए वह खुद को किताबों में खपाने का प्रयास करने लगा।

आठवें मंथली टेस्ट में उसे चौथी रेंक मिली। वह बहुत खुश था-वह चित्रा के साथ इस खुशी को सेलीब्रेट करना चाहता था, उसने बिग बाइट रेस्ट्रां से चित्रा के पसंदीदा पनीर रोल और बी. एंड आर. आइस्क्रीम पार्लर से मिंट चॉकलेट चिप्स आइस्क्रीम पैक कराई। वह चित्रा के फ्लेट की ओर जा ही रहा था कि रास्ते में नंदन मेहरा टकरा गया। उसका हाथ पकड़ कर बोला - 'चिकने कहाँ जा रहा है, मेरे रूम पर चल, बहुत मजा दूँगा तुझे।'

'छोड़ो मुझे'- कहते हुए उसने किसी तरह अपना हाथ छुड़ाया और दौड़ लगा दी। इस आपाधापी में सारा सामान सड़क पर ही बिखर गया। रूम पर आकर वह बहुत रोया।

वह अब तक हर अनहोनी के बाद स्वयं को मानसिक रूप से पहले से कहीं ज्यादा मजबूत बनाता आया था पर इस घटना ने उसे बहुत व्यथित कर दिया था। वह रात भर सो नहीं सका। बार-बार नंदन का चेहरा, उसका हाथ पकड़ना और वहशी आमन्त्रण उसकी नजरों में घूम जाता। सुबह जब उठा तो पूरा बदन टूट रहा था- ठीक से चलते भी नहीं बन रहा था। अगले दिन कोचिंग भी नहीं गया। शाम को चित्रा उसके रूम पर आ गई। क्या बताता उसे, कैसे बताता उसे, ये भी कोई बताने की चीज है, चित्रा बार-बार पूछती रही पर वह 'कुछ नहीं- कुछ नहीं' कहकर टालता रहा।

इस बीच उसे देवांग की याद आई। देवांग दो दिनों से अपने रूम में ही था। वह अन्दर चला

गया। देवांग के कमरे में किताबें कम अनेक तरह के गेजेट की भरमार थी- टेबल पर पॉवरबैंक, एफ.एम. रेडियो, सी.डी. प्लेयर, लेप टॉप, आई पेड, ब्लू टूथ, ब्रांडेड घड़ियाँ, टाइटन आई के चश्मे और न जाने क्या-क्या, वह तो सबके नाम भी नहीं जानता था। इसके अतिरिक्त महँगी जींस और टी शर्ट कुर्सी पर पड़ी हुई थी। उसे विश्वास हो गया कि देवांग बहुत पैसे वाले का बेटा है जिसके लिये कोचिंग-क्लास मनोरंजन का स्थान है।

दो दिन पहले ही देवांग अंकल से मिलकर आया था। इस बार अंकल ने देवांग को केसियो रिस्टवॉच और पेपे जींस गिफ्ट की थी। उसे पिछले माह देवांग के अंकल से हुई मुलाकात याद आ गई। जिद करके देवांग उसे अंकल से मिलाने उनके होटल ले गया था। पहली नजर में अंकल उसे बहुत भले और नेक इंसान लगे थे। उस दिन दोनों ने ही अंकल के साथ खाना खाया था। दो घंटे तक वह अंकल के साथ रहा। जब उसने लौटने के लिये कहा तो अंकल और देवांग ने भी उसे रात में वहीं रुकने के लिए कहा था, दोनों ने अगले दिन सावन-फुहार वॉटरपार्क जाने का कार्यक्रम बना लिया और उससे भी चलने को कहा था। पर वह किसी तरह बहाना बना कर अकेला लौट आया था। अंकल उसे पार्कर पेन का एक सेट गिफ्ट करना चाहते थे पर उसने शालीनता से मना कर दिया था। अंकल ने उसे गले लगा कर और उसके गालों को थपथपाकर विदा किया था।

इसके बाद उसे देवांग के अंकल के बारे में जानने की इच्छा होने लगी थी। वापस लौटने पर देवांग ने बताया था-'खत्री अंकल से पहली बार वह एक दोस्त के साथ मिला था। दोस्त की भी किसी सोशल साइट पर उनसे मुलाकात हुई थी-अंकल की जालंधर में स्पोर्ट्स गुड्स की मेन्यूफ्रेक्चरिंग यूनिट है- अपने बिजनेस प्रमोशन के लिये वह हर माह यहाँ आते हैं, दो-तीन दिनों के लिए।'

'वह हर बार इतने महँगे, महँगे गिफ्ट क्यूँ देते हैं' उसने कह तो दिया फिर उसे लगा कि यह कहकर उसने गल्ती कर दी है।

'वह कहते हैं कि मुझसे मिलने के बाद उन्हें यहाँ पर बहुत बिजनेस मिलने लगा है और उनका बिजनेस खूब चलने लगा है। उन्होंने तो पहली भेंट में ही मुझे इंटेक्स का स्मार्टफोन दिया था। इसके बाद से जब भी उन्हें बड़ा ऑर्डर मिलता है, वह मुझे कुछ न कुछ गिफ्ट करते हैं। एक बार मैं उनके साथ उदयपुर गया था तो उन्हें एक करोड़ का ऑर्डर मिला था, तबसे वह मुझे हर बिजनेस ट्रिप में अपने साथ ले जाते हैं।'

उसे देवांग की कहानी पता नहीं क्यूँ बड़ी रहस्यमयी लगी थी। वह यहाँ कोचिंग लेने आया था लेकिन एक अनजान अंकल के बिजनेस की उसे ज्यादा चिन्ता थी। यह बात उसे कचोटती थी और वह इसका उत्तर तलाशने की कोशिश लम्बे समय से कर रहा था।

तभी अंकल का फोन आ गया। वह जालंधर पहुँच गये थे। देवांग ने उन्हें बताया कि अभी शशांक उसके पास बैठा है। देवांग का इस तरह उसके नाम का जिक्र करना उसे असंगत लगा। वह उठ कर जाने लगा तो देवांग ने रोक लिया। कुछ देर तक कमरे में सन्नाटा छाया रहा। देवांग की कराह के साथ कमरे में पसरा मौन टूटा। देवांग के पेट में मरोड़ उठी थी- वह उठकर बाथरूम की ओर भागा- 'शशांक तुम रुकना अभी।'

देवांग के फोन पर बार-बार मैसेज आ रहे थे- वह अपनी उत्सुकता को रोक नहीं पाया और देवांग का फोन उठाकर देखने लगा। अंकल का मेसेज था- 'तुमसे मिलकर जब भी आता हूँ तो मन बहुत उदास रहता है- कुछ दिनों तक तुम्हारा हैंग ओवर रहता है- अगली बार जब मैं आऊँगा तो अपने दोस्त को मिलाने के लिए जरूर लाना- बड़ा कमसिन है कमबख्त।'

मैसेज ने उसका मूड खराब कर दिया। उस रात भी वह पढ़ नहीं सका। उसे ठीक से नींद भी नहीं आई। उसे बार-बार अंकल से हुई पहली मुलाकात याद आ जाती, जिस तरह से उन्होंने उसकी कमर में हाथ डालकर उसे गले लगाया था और उसके गाल थपथपाए थे। उसमें उसे पितातुल्य अंकल का वात्सल्य तो उस दिन भी नहीं लगा था। आज वह उस स्पर्श के माने जान गया था। उसने क्लास में जतिन मिश्रा और भुवन काले के बीच कुछ-कुछ होने वाले किस्से सुने थे। नंदन मेहरा और सुरेश जाटव के इशारे भी वह समझता था। लेकिन वही सब अंकल और देवांग-उसका सिर घूमने लगा और वह कब सो गया उसे पता ही नहीं चला।

वह कोशिश करके भी अपने मानसिक विचलन को समेट नहीं पा रहा था। अगले दो टेस्ट्स में उसकी रेंकिंग गिरकर सत्रहवीं हो गई। चित्रा भी असमंजस में थी-वह उससे भी ज्यादा बात नहीं कर रहा था। क्लास में भी दूर बैठने लगा था।

ग्यारहवीं की परीक्षाएँ आ रही थीं। दो माह के लिए कोचिंग क्लासेज बन्द होने वाली थीं। वह चित्रा से नजरें चुरा कर शीघ्रता से क्लास रूम से बाहर निकल आया था। नंदन मेहरा भी तेजी से उसके पीछे लपका। चित्रा ने दोनों को बाहर जाते देख लिया था।

'चिकने कब तक बच पायेगा-जाने से पहले एक बार तो देता जा', नंदन उसका रास्ता रोक कर कह रहा था।

तड़ाक-नंदन के गाल पर झन्नाटेदार तमाचा पड़ा। दोनों के बीच चित्रा खड़ी थी-'अबे उससे क्या माँगता है-मुझसे माँग-मैं देती हूँ-क्या चाहिये तुझे-बोल हरामी के पिल्ले।'

नंदन भाग खड़ा हुआ। चित्रा उसका हाथ पकड़ कर एक तरफ ले गई। वह कुछ बोल नहीं सका, आँखों से आँसू बह रहे थे, चित्रा भी रो रही थी। समय का कैसा फेर है ये- देश में दामिनियाँ भी सुरक्षित नहीं हैं-और तो और लड़के भी! लड़कों का दिखने में अच्छा होना भी कितना बड़ा अभिशाप है।

देवास जाने से पहले चित्रा और आंटी ने उसे ट्रेन में बिठा कर रवाना किया। पूरी यात्रा में चित्रा की याद उसके साथ बनी रही। वह कितना बौना है उसके सामने, कहने को मर्द है लेकिन जरा सी परेशानी में ही टूटने लगा था। चित्रा तो उसके लिए बिना कुछ सोचे किस तरह भिड़ गई थी नंदन से। अगर नंदन उसके साथ कुछ कर बैठता तो सोचकर ही उसकी हृदयगति बढ़ गई। अब कभी वह चित्रा को दुख नहीं पहुँचायेगा, हाथ जोड़कर माफी माँगेगा उससे। उसने अपने सबसे अच्छे मित्र को बहुत दुख पहुँचाया है, चित्रा से माफी जरूर माँगेगा, वह बहुत भली है, माफ कर देगी।

दो माह पंख लगाकर उड़ गए। माँ और सांभवी उसे कोटा तक छोड़ने आए। दो दिन साथ में रहे-पर सांभवी चित्रा से नहीं मिल पाई। वह तब तक कोटा नहीं आई थी। माँ का जाना जरूरी था।

वह पापा और दादी को ज्यादा दिन अकेला नहीं छोड़ सकती थीं। दादी अर्थराइटिस के कारण ज्यादा चल-फिर नहीं पाती थीं। पापा की भी शुगर अक्सर बढ़ जाती थी। माँ ही उनसे परहेज कराती थीं, वह स्वयं से तो रत्ती भर भी अपना ख्याल नहीं रखते थे।

कुछ दिन और बीत गये। नंदन जो घर गया तो फिर लौट कर ही नहीं आया। सामना होने पर उसका दोस्त सुरेश भी नजरें नीची किए निकल लेता। आई.आई.टी. मेंस का रिजल्ट आ गया। उसे अच्छे मार्क्स मिले थे लेकिन देवांग इस बार भी असफल हो गया था। वह इम्तहान देने के लिये घर गया तो लौट कर ही नहीं आया था। शायद उसे पता था कि उसका रिजल्ट क्या आने वाला है। कोचिंग, पढ़ाई और चित्रा के साथ उसकी दिनचर्या इतनी व्यस्त थी कि उसे देवांग के बारे में सोचने का ज्यादा समय ही नहीं मिला।

एक दिन जब वह कोचिंग से वापस लौटा तो आंटी उसे बाहर ही मिल गईं। उन्होंने उसे बताया कि देवांग अब नहीं आएगा। उसके पापा ने आठ-दस लाख का कर्ज लेकर उसे कोचिंग के लिए कोटा भेजा था। तीन बार में भी जब वह मेंस ही क्लीयर नहीं कर पाया तो हताशा में और कर्जदारों के दबाव के चलते उसके पापा ने ट्रेन से कटकर आत्महत्या कर ली। आज ही उसके अंकल उसका सारा सामान ले गए हैं। सुनकर उसे रोना आ गया-आँखों के सामने अँधेरा घिरने लगा। यदि आंटी न सँभालतीं तो वह गिर ही जाता। उस दिन आंटी ने उसे कमरे में नहीं जाने दिया। नीचे अपने पास ही सुलाया, अपने हाथों से ही उसे खाना खिलाया। रात में उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा - 'शशांक तुम बहुत बहादुर बच्चे हो और समझदार भी, मैंने तुम्हें बहुत जिम्मेदारी से सब काम करते देखा है, हर परिस्थिति से जूझने की ताकत है तुममें, आज तुम्हारे पापा का फोन आया था, दादी नहीं रहीं।'

वह एकदम चौंक कर उठ बैठा-'क्या कह रहीं हैं आंटी आप! मम्मी ने तो कुछ नहीं बताया मुझे, दोपहर में ही बात हुई थी उनसे, मेंस के रिजल्ट के बारे में बताया था।'

'इसके बाद ही तुम्हारे पापा का फोन आया था, उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि तुम्हारी खुशी के क्षणों में वह ये दुखद खबर कैसे दें, तुम्हारी दादी भी चाहती थीं कि तुम्हें डिस्टर्ब न किया जाए तभी उन्होंने उनकी बीमारी की खबर भी तुमको नहीं दी थी।' कहते हुए आंटी ने उसे अपने सीने से लगा लिया। वह धीरे-धीरे सुबक रहा था। आंटी ने कहना जारी रखा-'अब तुमको दादी की इच्छा पर भी खरा उतरना है, पापा चाहते हैं कि तुम अपनी कोचिंग पर फोकस करो और इस दुख को अपनी राह में आड़े न आने दो।'

जब वह कुछ संयत हुआ तो उसने सांभवी को फोन लगाया-'छुटकी तुमने भी मुझसे दादी की बीमारी की बात छुपा कर रखी,' कहते कहते वह रो दिया। 'मैं दादी को देख भी नहीं सका।'

'भैया'-सांभवी और कुछ न बोल पाई, रोने लगी। माँ से बात करने की उसकी हिम्मत नहीं हुई।

उसे दो दिन लग गये सामान्य होने में। इस दौरान चित्रा ने उसे एक पल के लिए भी अकेला नहीं छोड़ा। जिस दिन दादी का दसवाँ था उस दिन सबसे पहले उसने अपना सिर मुँड़ाया उसके बाद

ही कोचिंग गया। क्लास में सबको पता लग गया, सबने दादी की आत्मा की शांति हेतु प्रार्थना की और मौन रखा।

दादी की मौत ने उसे बहुत दुख पहुँचाया था–पर उसका निश्चय और दृढ़ हो गया। उसे जीतना ही है–अपने लिये, दादी के लिए, पापा के लिये, चित्रा के लिये और देवांग के लिये भी। देवांग के लिए इसलिए भी ताकि भविष्य में कोई देवांग बनने कोटा न आए। जब अगले मंथली टेस्ट का परिणाम आया तो वह क्लास में सबसे आगे था। इतना आगे कि दूसरे स्थान पर आने वाली चित्रा उससे पूरे दो अंक पीछे थी। चित्रा से आगे निकल जाना उसे अच्छा तो नहीं लगा था पर चित्रा खुश थी। इसके बाद तो हर टेस्ट में पहले दो स्थान उन दोनों ने अपने लिए सुरक्षित कर लिए–कभी वह आगे रहता तो कभी चित्रा।

आई.आई.टी. एडवांस का जब रिजल्ट आया तो दोनों ही प्रथम पचास बच्चों में स्थान बनाने में सफल रहे। वह सोच रहा था कि कुछ बनने के सफर में कितना कुछ छूट जाता है पीछे। न वह परिवार की खुशियों में सम्मिलित हो सका और न दुख के क्षणों में वह परिवार का साथ दे सका। समय चलता है तो चीजों भी पीछे छूटती चलती हैं, उसने बहुत कुछ खोया है पर दूसरे नजरिये से देखें तो जिंदगी के सही मायने भी सीखे हैं, हार न मानने के, हर हाल में होसला कायम रखने के, टूटने के क्षणों में स्वयं को सहेज कर रखने के और सबसे बड़ी बात अपने लिए सही मित्र चुनने के उसे चित्रा न मिली होती तो नंदन मेहरा उसका मानसिक शोषण करता रहता या फिर वह भी जतिन मिश्रा या भुवन काले की प्रतिकृति बन जाता या कोई खत्री अंकल उसे देवांग बना सकते थे। सब कहते हैं यह उम्र होती ही है बहकने की– कोचिंग में तो केवल विषय सिद्धि ही सिखाई जाती है असली कोचिंग तो जिंदगी का सार समझने की है जिसे कोई सिखाता नहीं है स्वयं सीखना होता है।

संपर्क : भोपाल (म.प्र.),
मो. 9893007744

नीरज त्यागी

माँ की आस

पंकज की दादी 15 अगस्त की सुबह जल्दी से ही तैयार हो गयी थीं। जैसा कि उसे मालूम था कि 15 अगस्त पर सभी टीवी के समाचार चैनलों पर भारत देश के सैनिकों को दिखाया जाता है। 65 साल की दादी को यह उम्मीद थी कि किसी न किसी चैनल पर सैनिकों के इंटरव्यू के बीच में उसके फौजी पोते पंकज की झलक भी उनको दिखाई देगी और उन्होंने सुबह से ही टीवी चला लिया। हर बार की तरह वह भी अपने पोते पंकज की एक झलक पाने के लिए टीवी के सामने बैठ गईं।

अचानक पंकज के पिता उनके कमरे में आए और उन्होंने अपनी माँ की तरफ गुस्से से देखा और बिना कुछ कहे कमरे से बाहर निकल गए। पंकज की दादी का पूरी तरह टीवी पर ही ध्यान था। कुछ समय बाद पंकज के पिता फिर कमरे में आए। इस बार अपनी माँ से वह गुस्से से बोले–क्या माँ तुम 26 जनवरी और 15 अगस्त पर टीवी चला कर बैठ जाती हो। क्यों बार–बार भूल जाती हो कि तुम्हारा पोता पंकज दो साल पहले बॉर्डर पर दुश्मनों से लड़ते हुए शहीद हो चुका है।

पंकज के पिता की आँखों में आँसू आ गए और पंकज की दादी की आँखें भी नम हो गईं। पंकज की दादी ने कहा– बेटा मुझे टीवी पर जो भी सैनिक दिखाई देता है उसमें पंकज दिखाई देता है और उन्होंने बड़े प्यार से अपने बेटे को गले से लगा लिया। इसके बाद माँ और बेटे दोनों ही नम आँखों से टीवी में आ रहे समाचार देखने लगे।

संपर्क : गाजियाबाद (उ.प्र.)
मो. 9582488698

मनीष वैद्य

जीवन की धड़कन : नव अर्श के पाँखी

कविताओं को पढ़ते हुए हम कवि के अंतर्मन से गुजरते हैं। उसके विचारों में हमें स्पष्ट कवि के मन की थाह मिलती है और हम उसके साधारण कथन में से एक खास तरह की असाधारण ध्वनि व्यंजित होती है, जो हमें उसके कवितापन से रू-ब-रू कराती चलती है। कबीर ने शायद इसे ही —'अनचिन्हार में चीन्हा' कहा है। कवि हमेशा ही अनचीन्हे को कुछ इस तरह हमारे सामने रखता है कि हम अनायास विस्मित हो जाते हैं। कवि की दृष्टि कुछ अलग तरीके से, नए रूपकों, नए बिम्बों और नए शिल्प का सहारा लेकर अपनी समझ को हमारे बीच रखने की कोशिश करता है। कवि स्वभावत: सहज और सरल होता है।

यही बात युवा कवयित्री अनुपमा श्रीवास्तव 'अनुश्री' के ताजा कविता संग्रह 'नव अर्श के पाँखी' से गुजरते समय महसूस होती रही। इन कविताओं में स्त्री का अंतर्मन है, अपने समय और समाज को पकड़ने की जद्दोजहद है तो प्रकृति को भी अलग-अलग कोणों से देखा गया है। कुल मिलाकर इन कविताओं में जीवन की धड़कन साफ सुनाई देती है। स्त्री को सिर्फ उसकी पीड़ाओं, दु:ख-तकलीफों की नजर से ही नहीं देखा गया है बल्कि नए समय के साथ स्त्री को सशक्त होने की बात भी इन कविताओं में बिना किसी झंडाबरदारी और लाउडलेस रूप में आती है। इन कविताओं का विषय विस्तार बहुत दूर तक जाता है और इनमें एक कवि के रूप में अनुपमा की गहन-गंभीर दृष्टि और अनुभवजन्य समझ की झलक मिलती है। कविता हमेशा ही अपने अनुभव संसार के मोतियों से निसृत होती है। कवि उसे भाषा और शैली में व्यवस्थित करता है लेकिन मूल रूप से यह कवि के जीवन को देखने-समझने की दृष्टि से ही आती है।

'हमारा देश आज पाठकों का देश बनने की प्रक्रिया में से निकल रहा है। वरना भारत तो है ही श्रुति का देश। श्रुति सिद्ध कविताएँ वे होती हैं, जिनके पास संप्रेषण हो। कविता का आकाश अनंत है, हमें लगातार बेहतर रचते जाना है।' ख्यात कवि बालकवि बैरागी ने यह बात इस किताब के फ्लैप पर कही है।

शीर्षक कविता 'नव अर्श के पाँखी' में एक पंक्ति है-हृदय को ईंट-गारा न समझें, संवेदनाओं भरा जहान चाहिए। यह पंक्ति कवि का सपना है, जो वह अपनी तरह के समाज के लिए चाहती है।

'नव अर्श के पाँखी' (कविता संग्रह), लेखक : अनुपमा श्रीवास्तव 'अनुश्री'
प्रकाशक : संदर्भ प्रकाशन, भोपाल

अनुपमा संवेदनाओं से भरा समाज चाहती हैं, जिसे हम करीब-करीब बिसरा चुके हैं। दरअसल हमारी पारम्परिक दृष्टि और हमारा प्राचीन समाज इसी संवेदना को सामूहिकता में जीता रहा है लेकिन इधर के सालों में हमने उसे तेजी से उजाड़ लिया है। कवि हमारे समाज को फिर से संवेदनाओं से जोड़ना चाहती हैं।

कविताएँ सहज-सरल और सम्प्रेषणीय होने के साथ संक्षिप्त और सटीक हैं। उनमें अनावश्यक विस्तार लगभग नहीं है। बिम्बों का ताजापन इनमें सौंधी गंध जगाता है। प्रवाहपूर्ण भाषा में होने से पाठक इन्हें अपनी लय में पढ़ लेता है। डॉ. प्रेम भारती के शब्दों में कहूँ तो कवि ने बहुत धैर्य के साथ-साथ गंभीरता, संयम और निष्ठा से ऐसी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं, जिन्हें पढ़ते हुए लगता है कि कविता रचने का उनका अनुभव बेहद आत्मीय और गाढ़ा है।

'किसने मुझे कहा, पतंग हूँ मैं' कविता में अपने तल्ख तेवर के साथ अनुपमा कहती नजर आती हैं- 'जब बाहर निकलती हूँ, अच्छी खबर लेती हूँ दुश्वारियों की, प्रतिभा, प्रेम, धैर्य, साहस का खिला इन्द्रधनुषी रंग हूँ मैं' इसी कविता में वे आगे यह भी कहती हैं 'कायनात का मधुर मृदंग हूँ मैं...' 'आकाश का कोना' कविता की ये पंक्तियाँ भी महत्त्वपूर्ण बन पड़ी हैं-'आकाश जितना आपके पास, उतना ही सबके पास। कभी लगता है यह भी, है सबके अपने-अपने आकाश।' या वक्त कविता में 'वक्त के पन्नों पर लिखी, अनगिनत कहानी। कभी इसकी जुबानी, कभी उसकी जुबानी, वक्त की मेहरबानी।' यह संग्रह मेरे पास काफी वक्त पहले पहुँच गया था लेकिन इससे दो बार गुजरने में और इस पर लिखने में लंबा वक्फा निकल गया। चाहता भी था कि कविताओं के क्षणिक प्रभाव में नहीं, थोड़ा ठहरकर लिखूँ ताकि इसके साथ न्याय हो सके।

एक किताब से गुजरना सिर्फ पढ़ने की तरह मैं नहीं कर पाता। मैं उसे कवि की तरह उनकी संवेदनाओं में ठहर कर अक्षर-अक्षर चीन्हते हुए आगे बढ़ता हूँ और इस संग्रह में तो विषय वैविध्य के साथ कवि के अनुभवों का एक भरा-पूरा संसार कायम है। इनमें जीवन की धड़कन और मानवीय मूल्यों की पड़ताल के साथ सरोकार को महसूस करना जरूरी है। हमारे बदलते हुए समाज में हम किन बातों और मूल्यों को खोते जा रहे हैं और हमारे वक्त की क्या वाज़िब चिंताएँ हो सकती हैं, उन्हें समझ कर पढ़े जाने की दरकार है।

प्रेम को यहाँ कवि अलग ढंग से महसूस करता है। यहाँ प्रेम का दायरा काफी बड़ी जगह में फैला हुआ है। इस प्रेम की परिधि में पूरी धरती ही शामिल है। 'इस सुनहरी आभा को, उतार लेना चाहती हूँ अपने दिल में और रँग देना चाहती हूँ, धरा को प्रेम के रंग में।' इसी तरह अंतरंग की अनुभूतियों में भी कई जगह सुंदर पंक्तियाँ बन पड़ी हैं। कहना न होगा कि उन्होंने अपने जीवनानुभवों को बड़े बेहतर ढंग से अपनी कविताओं में बुना है। कविता कवि के अनुभवों से ही गुज़रती है लेकिन यदि वह पाठक के मन से तादात्म्य स्थापित कर लेती है तो ही वह श्रेष्ठ हो पाती है। 'कालचक्र' कविता में वे वर्तमान जीवन की अंधी चूहादौड़ में शामिल हमारी आज की पीढ़ी को देखती हैं कि वे कितनी आत्मकेन्द्रित हो चुकी हैं, उन्हें समाज के बड़े सवाल नजर ही नहीं आते। जीवन से जुड़े पानी और पर्यावरणीय समझ के मुद्दों पर वे कभी नहीं सोचते। जबकि इन दोनों पर संकट हमारे भविष्य के जीवन पर संकट है। लोग अपनी वर्चुअल

दुनिया में खुश हैं, वे उन्हें लुभाते हैं और अपने से लगते हैं लेकिन जो यथार्थ की जिंदगी में हमारे अपने हैं, वे अब हमें सपने की तरह लगने लगे हैं।

दरअसल जीवन को सुंदर बनाने में मानव सभ्यता और संस्कृति के साथ उसकी बहुआयामी चेतना का विस्तार जरूरी है। मनुष्य की संवेदना ही उसे समाज और प्रकृति से जोड़ती है। मनुष्य की चेतना में संवेदना के तंतु प्रेम, सद्भाव, सहिष्णुता, अहिंसा, समर्पण, परोपकार जैसे नैतिक प्रतिमानों के जरिए उसे चेतना संपन्न बनाते हैं। साहित्य उन्हीं तंतुओं को छूने की कोशिश करता है और एक समरस समाज की कल्पना और निर्माण के लिए प्रयत्नशील रहता है।

यहाँ भी कविताएँ हमें बदलने की कोशिश करती हैं, वे हमारी बदलती हुई दुनिया के आसन्न खतरों से हमें चेताती है और अपने तरह की दुनिया का खाका भी चिन्हित करती है। ये कविताएँ हमें एक अलग तरह की भावभूमि में ले जाती है और जीवन की सुन्दरता से हमें रू-ब-रू कराती-सी नजर आती हैं। इन कविताओं में बहुत-सा कहने से छूटा हुआ है और यही अव्यक्त या छुटा हुआ ही हमारी अंतस की चेतना को झकझोरता है। साहित्य का असल मकसद शायद इसी स्पेस को पाठक के मन में रोप देने का है। ताकि दृष्टि और समझ दोनों ही विकसित होती है। इस मायने में ये कविताएँ बड़ा काम करती हैं। ये कविताएँ आश्वस्ति के साथ बेहतर संभावनाएँ भी जगाती हैं, आने वाले वक्त में और बेहतर कविताओं की। बहरहाल अनुश्री को बहुत शुभेच्छाएँ...

संपर्क : देवास (म.प्र.)
मो. 9826013806

राम पांडेय

आधुनिक हिंदी कविता को समृद्ध करती कविताएँ

इक्कीसवीं सदी के बीते डेढ़ दशक में अपनी अलग पहचान बनाने वाले युवा कवियों में सुशांत सुप्रिय का नाम प्रमुख है। इसमें आए सामाजिक बदलाव की बानगी इनकी कविताओं में स्पष्ट दिखाई देती है। समाज के हाशिए पर खड़े आम आदमी के जीवन-संघर्षों एवं लगातार समाप्त होते जा रहे विकल्पों का जीवंत दस्तावेज़ हैं, इनकी कविताएँ। सुशांत मज़दूरों, दलितों, स्त्रियों, शोषितों, वंचितों एवं आम जन की पीड़ा के पक्ष में मज़बूती से खड़े हैं। इनकी कविताएँ इंसानियत की बेहतरी के लिए संघर्ष करते रहने की जिद लिए हैं। समकालीन ज्वलंत प्रश्नों से सीधे संवाद करती इनकी कविताएँ सच बोलने का साहस रखती हैं। सुशांत के काव्य-संग्रह 'इस रूट की सभी लाइनें व्यस्त हैं' में कुल सौ कविताएँ संकलित हैं। इन कविताओं से गुज़रते हुए यह सुखद अहसास होता है कि समझ और संवेदना की गहराई लिए इस कवि की कविताएँ न सिर्फ़ मनुष्य होने का अहसास दिलाती हैं बल्कि मनुष्यता को बचाने के लिए प्रतिबद्ध भी हैं।

संग्रह की दूसरी कविता 'जो नहीं दिखता दिल्ली से' आज के राजनीतिक परिदृश्य को बहुत बेबाक़ी से व्यक्त करती है। लुटियन की दिल्ली में बैठे हुए जनता के रहनुमाओं को आम जन की पीड़ा नहीं दिखती। सुशांत का कवि किसानों और मज़दूरों की पीड़ा को देखकर उनके दर्द को समझता है। ग़रीबी और भूख से जूझ रहे आम जन की कराह दिल्ली तक नहीं पहुँचती। वह तो इनके अंदर ही तिल-तिल कर बुझ जाती है-'मज़दूरों-किसानों के/भीतर भरा कोयला और/ माचिस की तीली से / जीवन बुझाते उनके हाथ/ नहीं दिखते हैं दिल्ली से... / दिल्ली से दिखने के लिए/ या तो मुँह में जय जयकार होनी चाहिए / या फिर आत्मा में धार होनी चाहिए।'

नयी सदी की मशीनी सभ्यता के विषैले डंक ने आम आदमी को भी नहीं बख्शा है। जीवन के तमाम आत्मीय संबंध तार-तार हो गए हैं। रोज़ी-रोटी के जुगाड़ में दूरियाँ बढ़ती जा रही हैं। गाँवों से शहरों की तरफ़ तेज़ी से पलायन हो रहा है। इस आपा-धापी में किसी के पास इतनी फ़ुर्सत नहीं है कि अपनों को

पुस्तक : इस रूट की सभी लाइनें व्यस्त हैं (काव्य-संग्रह)
लेखक : सुशांत सुप्रिय
प्रकाशक : अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, 2015

समय दे सकें, उनका दुख-दर्द बाँट सकें। तेज़ी से बदलते समय में बिखरते संबंधों को बयाँ करती सुशांत की बहुत सुंदर कविता है 'दिल्ली में पिता' - 'किंतु यहाँ आकर / ऐसे मुरझाने लगे पिता / जैसे कोई बड़ा सूरजमुखी धीरे-धीरे / खोने लगता है अपनी आभा।'

महानगरों की ओर तेज़ी से होते पलायन ने सामाजिक संबंधों की डोर को कमज़ोर कर दिया है। संबंधों की दीवार दरकने लगी है। रिश्तों की चारदीवारी छोटी होने लगी है, जिसका असर सामाजिक ढाँचे पर पड़ रहा है। सुशांत का कवि महानगरों की दूषित हवा में मौजूद सामाजिक बिखराव का द्रष्टा ही नहीं, भोक्ता भी है- 'कुछ दिनों बाद / जब ठीक हो गए पिता / तो पूछा उन्होंने-/बेटा, पड़ोसियों से / बोलचाल नहीं है क्या तुम्हारी / मैंने उन्हें बताया कि बाबूजी / यह अपना गाँव नहीं है / महानगर है, महानगर / यहाँ सब लोग / अपने काम से काम रखते हैं, बस! / यह सुनकर उनकी आँखें / पूरी तरह बुझ गईं।

बदलते परिवेश में आज सबसे बड़ा संकट पठनीयता पर है। टेलीविज़न के रंग-बिरंगे कार्यक्रमों, रियलिटी-शो और सीरियल देखने के आगे साहित्य पढ़ने की फुर्सत किसको है। सुशांत सुप्रिय की चिंता हिंदी कविता की पठनीयता को लेकर है। कविताएँ लिखी तो बहुत जा रही हैं किंतु उनके पाठक नहीं हैं। नयी सदी के हिंदी कवियों की पीड़ा को सुशांत 'इक्कीसवीं सदी में हिंदी कवि' कविता में व्यक्त करते हैं - 'जैसे अपना सबसे प्यारा / खिलौना टूटने पर / बच्चा रोता है / ठीक वैसे ही रोते हैं / हिंदी-कवि के शब्द / अपने समय को देखकर ... / इस रुलाई का / क्या मतलब है- / लोग पूछते हैं / एक-दूसरे से / और बिना उत्तर की / प्रतीक्षा किए / टी.वी. पर / रियलिटी-शो / और सीरियल देखने में / व्यस्त हो जाते हैं ... / किसी को क्या पड़ी है आज / कि वह पढ़े हिंदी के कवि को ऐसे / जैसे पढ़ा जाना चाहिए / किसी भी कवि को।'

सुशांत की कविता 'कामगार औरतें' महाकवि निराला की 'वह तोड़ती पत्थर' की याद दिलाती है। क्या सुंदर बनावट है कविता की। शब्द-विधान इतना सुंदर कि पूछिए मत। ऐसा लगता है जैसे एक-एक शब्द भावों से सना हुआ है। कामगार औरतों की थकी चाल की विश्व-सुंदरियों की कैट-वाक् से तुलना करके सुशांत ने जो यथार्थ का जीवंत चित्र खींचा है, वह अद्भुत है- 'कामगार औरतों के / स्तनों में / पर्याप्त दूध नहीं उतरता / मुरझाए फूल-से / मिट्टी में लोटते रहते हैं / उनके नंगे बच्चे / उनके पूनम का चाँद / झुलसी रोटी-सा होता है... / हालाँकि टी. वी. चैनलों पर / सीधा प्रसारण होता है / केवल विश्व-सुंदरियों की / कैट-वाक् का / पर उससे भी / कहीं ज़्यादा सुंदर होती है / कामगार औरतों की थकी चाल।'

तेज़ी से सांप्रदायिक होती जा रही राजनीति को 'पागल' कविता बयाँ करती है। चाहे सन् 1992 का बाबरी मस्जिद विध्वंस हो या 2002 के गुजरात दंगों का जख्म, यह सब सुशांत के कवि को गहरे स्तर तक प्रभावित करता है। इन दंगों को मानवता के नाम पर कलंक बताते हुए 'पागल' पूछता है- 'बताओ तुम कौन हो / हिंदू हो या मुसलमान हो -/ वह सबसे पूछता है / उसका बाप / बाबरी मस्जिद के / विध्वंस के बाद / दिसम्बर, 1992 में हुए / दंगों में / मारा गया था... / उसका बेटा / 2002 में गुजरात में हुए / दंगों में / मारा गया था ... / जिन्होंने उसके / बाप को मारा / वे हँसते हुए / उसे पागल कहते हैं / जिन्होंने उसके बेटे को / दंगाइयों से नहीं बचाया / वे हँसते हुए उसे / पागल कहते हैं। 'कैसा समय है यह' कविता में

कवि क्षुब्ध है क्योंकि 'अयोध्या से बामियान तक / ईराक़ से अफ़ग़ानिस्तान तक / बौने लोग डाल रहे हैं / लम्बी परछाइयाँ।'

सुशांत जनतंत्र में वी. आई. पी. संस्कृति के खिलाफ हैं। किसी व्यक्ति के आम से ख़ास हो जाने पर सुरक्षा के नाम पर आम आदमी को जो कठिनाई उठानी पड़ती हैं, उस पर सवालिया निशान लगाती है 'वी. आई. पी. मूवमेंट' कविता – 'मुस्तैद खड़ा है / ट्रैफ़िक पुलिस विभाग / चौकस खड़े हैं / हथियारबंद सुरक्षाकर्मी / अदब से खड़ा है / समूचा तंत्र / सहमा और ठिठका हुआ है / केवल आम आदमी का जनतंत्र / यह कैसा षड्यंत्र?' संविधान में गणतंत्र की जो परिभाषा दी गई है, उससे उलट आज समाज में कुछ ख़ास लोगों की सुरक्षा के नाम पर आम आदमी को परेशान किया जाता है। एक वी. आई. पी. मूवमेंट के लिए घंटों सड़क बंद कर दी जाती है, आम आदमी को रोक दिया जाता है। गणतंत्र के इस स्वरूप पर सुशांत कहते हैं – 'मित्रो / आम आदमी की असुविधा के यज्ञ में / जहाँ मुट्ठी भर लोगों की सुविधा का / पढ़ा जाए मंत्र / वह कैसा गणतंत्र?'

संग्रह को पढ़ते हुए एक साधारण-सी कविता भी अपनी ओर ध्यान खींचती है। इक्कीसवीं सदी में एक कवि की पीड़ा बिल्कुल जायज़ लगती है, जब वह एक बेटी के पिता की पीड़ा और चिंता को बयाँ करता है। घर से बाहर निकली बेटी जब तक घर वापस नहीं आ जाती, तब तक एक पिता की बेचैनी को व्यक्त करती है 'लड़की का पिता' कविता – 'लेकिन / डर भी लगता है क्योंकि / बाथरूम के नल में से / झाँक रहा है / इलाक़े का गुंडा / बिल्डिंग की लिफ़्ट में / घात लगाए बैठा है / कोई रईसज़ादा / सामने से बाइक पर / चला आ रहा है / एसिड की बोतल लिए / कोई लफ़ंगा।'

सुशांत सुप्रिय के प्रस्तुत कविता-संग्रह की कविताएँ भाव और भाषा की ताज़गी से युक्त हैं। अपने आस-पास के जीवन और परिवेश को नई दृष्टि से देखना तथा जीवन और जीवनेतर चीज़ों पर विचार-मंथन करके उन्हें नए रूप में प्रस्तुत करना इनकी विशेषता है। शिल्प और संवेदना-दोनों के धरातल पर ये कविताएँ खरी उतरती हैं। संग्रह की सभी कविताएँ एक से बढ़कर एक हैं। राजनीति से लेकर धर्म तक, समाज से लेकर प्रकृति और पर्यावरण तक, प्रेम से लेकर देश-प्रेम तक, सभी भावभूमियों की कविताएँ इस संग्रह में हैं। पारदर्शी भाषा से युक्त ये कविताएँ आधुनिक हिंदी कविता को समृद्ध करती हैं।

डॉ. भूपेन्द्र हरदेनिया

जनपदीय भारत में अन्त्यजीय संवेदना का धर्मशास्त्र

आज के साहित्यिक परिवेश में दलित विमर्श के साथ एक गम्भीर मुद्दा भी है, साथ ही एक चिंतनीय विषय भी। विषय उन दलितों का जिन्हें आज हम पंचम वर्ण या अन्त्यज भी कहते हैं। 'चातुर्वण्यं मया सृष्टं' कहते हुए गीता में भी कृष्ण ने बताया था कि संसार में उनके द्वारा सिर्फ चार वर्णों का ही सृजन हुआ है, लेकिन समाज के उच्च वर्ग की स्वार्थ लिप्सा के कारण उस पंचम वर्ण का भी निर्माण हुआ। ये वर्ण आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक धरातलों पर उपेक्षित ही नहीं अस्पृश्य भी माने जाते हैं। बौद्ध, जैन धर्म के प्राचीनकाल से ही सामाजिक और धार्मिक असंतुलन को दूर करने का प्रयत्न करने पर भी इनके प्रवचन तालपत्रों तक ही सीमित रह गये। वर्ण व्यवस्था में कुछ वर्णों की उन्नति के लिए कुछ वर्णों को दबाया गया था। फलस्वरूप पंचम वर्ण का निर्माण हुआ। परम्परागत हिन्दू समाज ने इस वर्ण को दलित या दमवित वर्ग का नामकरण भी किया था। आज इसी दलित को उनके अधिकार दिलाने और शोषण से मुक्ति दिलाने हेतु अनेक दल, अनेक संगठन एवं राजनैतिक पार्टियाँ अपने स्तर अपनी-अपनी रोटी सेकने में लगी हैं, लेकिन यथार्थ में अगर कोई कार्य हुआ है तो वह साहित्य के क्षेत्र में। साहित्य में अनेक विचारकों और चिंतकों ने दलितों पर अपनी लेखनी चलाई है, और उस लेखनी से दलितों की मार्मिक व्यथा और कथा को लोगों तक पहुँचाने का स्तुत्य कार्य भी किया है, लेकिन एक विवाद इसमें भी चल पड़ा कि दलितों की कथा दलित ही लिख सकते हैं, क्योंकि जो भोगता है, वही उसे सही ढंग से व्यक्त कर पाता है, इसीलिए एक कहावत भी चल पड़ी है कि दलितों की कहानी दलितों की ही जुबानी।

प्रायः ऐसा माना जाता रहा है कि जो भोग्यमान अनुभूति है, वही सही ढंग से अभिव्यक्त हो सकती है। जो जिसने भोगा ही नहीं, उसे वह कैसे अभिव्यक्त कर सकता है, पर यह अंशतः सत्य हो सकता है, पूर्णतः नहीं, अगर ऐसा होता तो प्रेमचन्द अमर न होते। आज हिन्दी कथा की कहीं बात होगी तो प्रेमचन्द के उल्लेख के बगैर वह बात अधूरी ही रहेगी। इसी प्रकार यह भी यथार्थ है कि अनुभूयमान अनुभूति भी लगभग वैसे ही होती है या हो सकती है, जैसी भोग्यमान अनुभूति होती है। इस संसार में करुणा एक ऐसा शब्द है जो अगर न होता तो मानवता ही न होती। क्योंकि करुणा के माध्यम से हम दूसरे

संग्रह : मेरी इतनी-सी बात सुनो, लेखक : डॉ. देवेन्द्र दीपक
प्रकाशक-इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-प्रथम, 2016

के दर्द को महसूस कर सकते हैं, भले ही वह दर्द, कष्ट हमने भोगा न हो, लेकिन हमने महसूस जरूर किया होगा। यह सब अनुभूयमान अनुभूति के कारण ही होता है। इस अनुभूयमान अनुभूति की सशक्त अभिव्यक्ति जो कि अन्त्यज संवेदना को एकदम सजीव कर देती है, वह हमें दिखाई देती है, प्रसिद्ध रचनाकार डॉ. देवेन्द्र दीपक की रचनाओं में। इस तरह की अभिव्यक्ति को लेकर हाल ही में उनका एक महत्त्वपूर्ण काव्य संग्रह 'मेरी इतनी-सी बात सुनो' प्रकाश में आया है। साहित्य जगत में भी इसकी खासी चर्चा है। इस काव्य संग्रह का शीर्षक ही बहुत थोड़े में बहुत कुछ कह जाता है, अर्थात् सामासिकता लिए हुए है। यह सम्पूर्ण काव्य संग्रह अन्त्यज अनुभूतियों या दलित चेतना को समर्पित है।

रचनात्मकता की तिलस्मी दुनिया के सुपरिचित, तेजस्वी और सशक्त हस्ताक्षर डॉ. देवेन्द्र दीपक का यह नवीनतम कविता संग्रह उनकी अनूठी कृति है। इस संग्रह की विषय-वस्तु पर अगर दृष्टिपात किया जाए तो कहा जा सकता है कि यह संग्रह जनपदीय भारत का अस्पृश्यीय धर्मशास्त्र है। इस संग्रह में दलित समस्या के ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक संज्ञान के साथ, दलितीय जीवन के बहुत बड़े क्षितिज को भी ढूँढ़ा और उन संकटों के विरुद्ध एक नई दृष्टि विकसित की है। इस हेतु इस संग्रह की कविताएँ दलित समस्या के अपने नए भाव-बोध और दृष्टि को उकेरते हुए एक नए परिवेश में प्रवेश करती है। जाहिर है उनकी काव्य दृष्टि तत्कालीन अंतराल के साथ, स्मृति के वैभव से टकराती है। इसीलिए उनकी कविताएँ दलित चिंतन को इस कदर जीवंत कर देती हैं, मानो वह रचनाकार की भोग्यमान रचना ही हो। देवेन्द्र दीपक के इस संग्रह की साधारण, सहज और सरलता से समझ आने वाली कविताओं में दलित विमर्श को एक विशिष्ट और नवीन तरीके से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

दीपक जी के इस संग्रह से जब आत्मसात होता है तो ज़ाक देरिदा का विखंडनवाद याद आता है, जो पाठ के पुनर्पाठ, उसके अन्तर्पाठ, उसकी पड़ताल और उस पाठ के विखंडन पर बल देता है, लेकिन दीपक जी के इस संग्रह की कविता विखंडन की कतई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उनकी कविताएँ बगैर विखंडन के शहद का स्वाद और शहद की सेहत एक साथ दे देती हैं। आदमी और आदमी की छाया की तरह उनकी कविता अन्वयात्मक तरीके से व्यक्त होती है। उन्होंने स्वयं भी इस संग्रह की भूमिका में लिखा है कि ''मेरी प्रत्येक कविता में आपको एक अन्विती मिलेगी। विचार की, भाव की, प्रभाव की। कविता में प्रयुक्त होते ही मानो शब्द को हल्दी लग जाती है और साधारण-सा शब्द एकदम महत्त्वपूर्ण हो जाता है। मेरी कविता में प्रत्येक शब्द किसी आशय से विन्यस्त है। मेरी अभिधा, व्यंजना-गंधी है। मेरी कलम 'साफ बयानी' और 'सपाट बयानी' के अन्तर को समझती है। मेरी कविता का एक पाठ प्रत्यक्ष है, लेकिन उसके भीतर एक अन्तर्पाठ भी है। मेरी कविता अपने पाठक को उस अन्तर्पाठ तक सहज ले जाती है।'

माना जा सकता है कि इस संग्रह की कविता मार्ग और लक्ष्य की कविता है, वह आपका मार्ग भी है और लक्ष्य भी। लक्ष्य कौन सा? लक्ष्य मुक्ति का। अब मुक्ति किससे? तो मुक्ति उस मानसिकता से जो आज हमारे समाज में दलितों और अस्पृश्यों के सामान्य वर्ग के लोगों में व्याप्त है। मुक्ति व्यवहार से जो उच्च वर्ग निम्न वर्ग के प्रति करता है, मुक्ति उस यातना से जो अन्त्यज को तिल-तिल मरने को बाध्य कर रही है। सच तो यह है कि ये कविताएँ सिर्फ विरोध की कविताएँ ही नहीं हैं बल्कि विरोध के मुखर न होने

की स्थिति और उन पीड़ाओं से जूझती मन:स्थिति की पारदर्शी कविताएँ हैं। ''उनकी कविता सवर्ण समाज के अन्तर्विरोध पर अपने को फोकस करती है। यह उसकी मुख्य भूमिका है। लेकिन अस्पृश्य समाज के अपने अन्तर्विरोध भी हैं। उन अन्तर्विरोधों की चर्चा कहीं होगी? लोग इस बात से दु:खी हैं कि उनके कंधे पर किसी का पाँव है। दु:खी होना स्वाभाविक है। लेकिन वह यह भूल जाते हैं कि उनके पाँव के नीचे भी कोई कंधा है जो दबाव की पीड़ा से आहत है। ऊपर वाले से मुक्ति चाहते हो तो नीचे वाले को भी मुक्ति देनी होगी।'

दीपक जी के इस संग्रह की कविता सवर्ण और दलित के अन्तर्विरोधों से मुक्ति की कविता है। इसी मुक्ति की आकांक्षा लिए इस संग्रह की कविता के माध्यम से दलितों के प्रति सवर्ण मानसिकताओं के कई कटु-सत्य परत-दर-परत सामने तो आते ही हैं, साथ ही सवर्ण मानसिकता में अस्पृश्यता की गहरी पैठ का दुष्परिणाम भी सामने होता है। इस संग्रह की कविताएँ उच्च वर्ण के मनस्तत्त्व में विद्यमान क्रूर, कठोर और कटु अन्त्यजीय मन:स्थिति की पड़ताल करते हुए, उन तमाम घटनातीत गंभीरताओं को समेटते हुए या फिर उन वैचारिक विसंगतियों की जमीन पर, वर्तमान में घटित उन तमाम कराह और तिक्तता को भी गहरे ढंग से चिन्हित करती हैं। लिहाजा सहृदय दलितीय जन-चेतना, उनकी खोई सांस्कृतिक परंपराओं, उनके भाव-संसार और इतिहास के पन्नों से अलग होते द्वंद्व के वर्तमान से परिचित तो होते ही हैं, साथ ही विचलित भी।

सामाजिक दृष्टि से अगर देखा जाए तो भारत की कई मामलों में स्थिति प्राचीनकाल से ही अत्यंत दुर्बल रही है। प्राचीन काल में जाति-उपजातियों का विभाजन इसके प्रमाण थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-इन चारों वर्णों के अतिरिक्त समाज का एक बहुत बड़ा भाग ऐसा था जिसे 'अन्त्यज' पुकारते थे। इन्हें समाज के किसी भी वर्ग में स्थान प्राप्त न था। चमार, जुलाहे, मछुआरे, टोकरी बुनने वाले, शिकारी आदि इस वर्ग में सम्मिलित थे। इनमें भी निम्न स्तर हादी, डोम, चाण्डाल, वधाटु आदि वर्गों का था जो सफाई और स्वच्छता के कार्यों में लगे हुए थे, परन्तु इन्हें नगरों और गाँवों के बाहर रहना पड़ता था। वैश्या तथा शूद्रों को वेद और धार्मिक शास्त्रों को पढ़ने का अधिकार न था। यदि इनमें से कोई ऐसा करता था तो उनकी जबान काट ली जाती थी। समाज से पृथक वर्गों की स्थिति का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उनकी स्थिति तो वैश्यों और शूद्रों से भी निम्न थी। इसीलिए सिसृक्षु डॉ. देवेन्द्र दीपक का अन्तर्मन, विवेकानन्द के उन्मन मन के रूप में जातीय दम्भ रखने वाले समाज के ठेकेदारों से प्रश्न कर रहा है और कह रहा है-उन्मन, उन्मन, उन्मन/तुम्हारा प्रेम भरा मन/बंधु/तुम्हारे उन्मन मन में/चींटियों के लिए है आटा/पक्षियों के लिए दाना/मछलियों के लिए गोलियाँ/बंदरों के लिए चने/कुत्ते के लिए रोटी/ और गाय के लिए गो-ग्रास!/यह सब अच्छा है।/बंधु,/अछूत के लिए/तुम्हरे उन्मन मन में/क्या है/तुम्हारे पास?/यह सवाल मैं नहीं/विवेकानंद पूछ रहा है!

'मेरी इतनी-सी बात सुनो' संग्रह की इक्यावन कविताएँ संग्रह की मणिमाला हैं या यूँ कहें जिस प्रकार मालाकार माल्य निर्मिति के समय पुष्पों का चुनाव कर एक श्रेष्ठ माला का निर्माण करता है, उसी प्रकार इस संग्रह की कविताओं को पुष्प की तरह ही चुना गया है, लेकिन देखने में पुष्पित और पल्लवित इस संग्रह की कविताएँ उनसे भी बढ़कर माणिक्य और मोती हैं, जो कभी बासी नहीं होते, हमेशा

दैदीप्यमान रहते हैं। वह रत्न जणित एक ऐसा सुन्दर हार है जिसे अगर पहन लिया जाए तो निश्चित ही जन-कल्याण सम्भव है।

इस संग्रह की पहली कविता शीर्षकीय कविता है, जो कि पीढ़ीगत होते दलितीय अत्याचार के आक्रोश का बीचवपन भी कही जा सकती है। जिन्होंने हमेशा अत्याचार सहे, अस्पृश्यता के नाम पर कष्ट सहे वही आज अपना स्वर शोषकों के प्रति मुखर किए हुए हैं। अपनी बात को, अपनी आवाज को उन तक पहुँचाने और अपनी संवेदनाओं को व्यक्त करने के लिए वह मुखर है। वह सब सहते हुए भी अन्जान नहीं है, इसीलिए वह कहता है-बहरे नहीं हो/और सुन सकते हो/तो/मेरी इतनी-सी बात सुनो-/'बंदूक हूँ,/ कंधा नहीं हूँ मैं/अन्त्यज हुआ तो क्या/अंधा नहीं हूँ मैं?'

चिरकाल तक सहा गया कष्ट या लम्बे समय से सहा गया दु:ख का, जब अतिरेक हो जाता है, तब कुम्भोच्छलनवत वह भाव या दुख, वह कष्ट आक्रोश के रूप में छलक उठता है, तत्समय हम महसूस करते हैं और देखते हैं कि अतीत की कचोटती घटनाओं से मुक्ति की छटपटाहट, भीतर ही भीतर प्रतिशोध, अपनी बेचैनी की मुक्ति का आक्रोश, समक्ष हो उठता है। दीपक जी के लिए इस संग्रह की कविताएँ-कबीरदास का कर्घा है/रविदास की कठौती/सेन का उस्तरा/और नामदेव की सुई है। उनकी कविता पसीने की गंध का सौंदर्यशास्त्र है, उत्पीड़न के बखान का धर्मशास्त्र है, एवं अन्त्योदय से सर्वोदय तक फैला समाजशास्त्र भी है। इसीलिए इस संग्रह की कविताओं में कवि की महीन दलितीय संवेदना, दृष्टि सम्पन्नता, अपने आलोचनात्मक विमर्शों के माध्यम से अस्पृश्यता की जमीनी पड़ताल त्रिशास्त्रीय तरीके से करने का प्रयास किया गया है। यह संग्रह विभिन्न अन्त्यज अनुभूतियों की हकीकत के साक्ष्य पाठक के समक्ष रखने का सफल प्रयास करता है।

शोषण का इतिहास बहुत पुराना है, लेकिन यह शोषण किस कारण और वजह से। सिर्फ इसलिए ताकि उस पर शोषक सिर्फ अपनी रोटी सेंक सके। हर व्यक्ति का अपना जीवन होता और उसे वह जीवन अपने ही तरीके से जीने का अधिकार भी होता है, उसके जीवन में कोई हस्तक्षेप करे तो द्वंद्व की स्थिति पैदा होती ही है, आज वह द्वंद्व दलित और शोषक के बीच भी उपस्थिति है, क्योंकि तबका कोई भी हो वह अपना जीवन अपने स्तर से जी सकता है, ज्यादा न सही कम में ही सही, इसीलिए इस संग्रह का शोषित जो कि दलितीय भूमिका में कहता है-मेरी आग इसलिए नहीं/कोई दूसरा/इस आग पर आपनी रोटियाँ सेंके।/मेरी आग मेरी अपनी है/मेरी आग इसलिए नहीं/कोई दूसरा/इसे अपनी पूँजी समझे/ और अपना धंधा चलाए।/मेरी आग/मेरी रोटी/पतली हो या मोटी।

इस संग्रह की प्रत्येक कविता एक सवाल उत्पन्न करती है और उसके जवाब की तह तक ले जाने का महनीय प्रयास भी। निश्चय ही वह सवाल दलितीय संवेदना से जुड़ा हुआ है और उसका जवाब भी वही। जिसकी रचनात्मकता का अपना विशिष्ट प्रवाह है जहाँ हमारी संवेदनाओं पूर्णतया अन्त्यज जीवन और उनसे जुड़ी दारुण गाथाओं के लिए संवेदित हैं। इसीलिए इस संग्रह की एक कविता 'सूत्रधार' में उस सूत्रधार को पकड़ने की बात कही गई है जो शोषणीय घटना का प्रमुख है। कवि कहता है कि-हर घटना के पीछे कोई हाथ होता है/उस हाथ के पीछे भी होता है कोई हाथ/...और यह जो आखिरी हाथ है/बस, वही सूत्रधार है.../हम सूत्रधार को पकड़ें।

शोषण चाहे मानसिक हो या सामाजिक, आर्थिक हो या धार्मिक, शोषण तो शोषण ही होता है। शोषण स्त्री या पुरुष किसी का भी हो सकता है। लेकिन शोषण जहाँ होगा वहाँ कभी न कभी विद्रोह भी होगा। चाहे उसमें कितना भी समय लग जाए। शताब्दियों से धर्म की रूढ़ियों के नाम पर हमारे देश में एक वर्ग का सामाजिक, मानसिक और आर्थिक शोषण किया गया है। लेकिन जैसे ही मानवीयता के भाव जागे और शोषित वर्ग के साथ सभी वर्गों में चेतना आई परिणामस्वरूप विद्रोह का विस्फोट हुआ और रामू जैसे लोग पैदा हुए जिन्होंने अपनी चेतना को जाग्रत कर अपने ऊपर हो रहे अत्याचार को समूल नष्ट करने की ठानी। इसीलिए इस संग्रह की कविता 'रामू खुद लड़ेगा' का रामू आज अपने अतीत को याद करते हुए मोर्चा सँभाले हुए अन्यानेक शोषकों जिन्होंने कभी उसके साथ अत्याचार किया से लड़ने के लिए तत्पर है, रामू कहता है–मैं अछूत हूँ/मेरा नाम रामू है।/मेरी तनातनी, कहा–सुनी, गिला–शिकवा/जो कुछ भी है/वह पंडित रामदीन/ठाकुर रामसिंह/लाला रामदयाल से है।/रामू अपनी लड़ाई खुद लड़ेगा/... रामू जानता है/उसके सिर पर मैले का टोकरा/क्यों, कब और कैसे आया? स्मृतियाँ कभी नष्ट नहीं होतीं और वो स्मृतियाँ तो कभी नहीं जो जीवन और मृत्यु के प्रश्नों से जुड़ी होती हैं। ऐसी स्मृतियाँ जिसमें जुड़े होते हैं मौत से साक्षात्कार और जीवन को हर हाल में बचा लेने की उत्कृष्ट लालसा के प्रसंग, वे काल के नेपथ्य में जाकर वर्तमान से संवाद करती रहती हैं। वे मनुष्य के अवचेतन में बीज रूप में अवस्थित रहती हैं, जो स्थान, काल और परिवेश के साम्य के साथ पुनर्जीवित होकर सामने आ जाती हैं, तथा वर्तमान को झकझोर भविष्य को आशंकाओं से भर देती हैं। रामू जानता है कि आज जिस स्थिति में वह है, किसकी देन है।

आज हमारे देश का सबसे बड़ा ज़हर है अस्पृश्यता। अस्पृश्यता के वातावरण ने भारतीय समाज में जिस कदर वर्ग वैषम्य और वर्ग विभेद का जहर घोला है, उससे आज का सम्पूर्ण भारतीय समाज अपनी मृण्यमयी भूमिका में है। दलितों को अस्पृश्य और नीच जाति के मानने के कारण समाज में इनका जीवन दूभर हो जाता है। फलस्वरूप वे मानव होकर भी समाज के अन्य लोगों के जैसे स्वतंत्र रूप से जीवन बिता नहीं सकते हैं। सार्वजनिक स्थानों पर विचरना वर्जित है। अस्पृश्यता की यह रीति दलितों के लिए अभिशाप बन गई है। हमें अस्पृश्यता की दुष्परिणाम मालूम होते हुए भी आज हम पर वह इस तिलिस्म के साथ हावी हो चुकी है, कि हम उसके जादुई आवरण से उबर नहीं पा रहे हैं। इस बात से हम बहुत अच्छी तरह वाकिफ हैं कि अस्पृश्यता अवैदिक है/अस्पृश्यता अधार्मिक है/अस्पृश्यता अनैतिक है/अस्पृश्यता हिंसा है/अस्पृश्यता पक्षपात है/अस्पृश्यता शोषण है/अस्पृश्यता सामाजिक रोग है/अस्पृश्यता सामाजिक रोग है/अस्पृश्यता तामसी है।...इतना सब–कुछ है/अस्पृश्यता के खिलाफ!...फिर भी ताल ठोककर/आँखें तरेरकर/नथुने फुलाकर/बदकलाम अस्पृश्यता/ललकारती है यहाँ–वहाँ/गाँव–नगर द्वार–द्वार/बार–बार/साफ–साफ! क्योंकि हमारे जो आज प्रयास हैं वे भरसक नहीं हैं, वे नाकाफी हैं, इस अस्पृश्यता के जहर को कम करने के लिए। वस्तुतः उच्च होने का भारतीय समाज के सवर्ण वर्ग में जो कूट–कूट कर भरा हुआ है, उस अहं का दम्भ उसे इस अस्पृश्यीय मानसिकता से उबरने नहीं देता। आज जिस कदर जातीय दम्भ हमारे समाज में व्याप्त है, वह उस अस्पृश्यता को पीढ़ी–दर–पीढ़ी पोषित और पल्लवित करने के लिए काफी है। इसीलिए तुम्हारे बाबा ने/प्याले में भर दिया जातीय दम्भ/और तुम्हारे पिता ने/उसे दूध की तरह/पी लिया!/तुम्हारे पिता ने/प्याले में भर दिया जातीय दम्भ/और तुमने/उसे

रूहअफ़्ज़ा की तरह/पी लिया/और अब तुमने/प्याले में भर दिया जातीय दम्भ/और तुम्हारा बेटा/उसे शराब की तरह पी रहा है!

आर्थिक और सांस्कृतिक मजबूती से अपना प्रभाव दिखाने वाले उच्च वर्णों के सामने यह दलित वर्ग दब जाता है। उनमें समाज की घातक प्रथाओं का विरोध करने की हिम्मत नहीं होती। वे लोग इस अंधविश्वास में रहते हैं कि छोटे-बड़े भगवान के घर में बनकर आते हैं। फलस्वरूप रीतिरिवाजों के पालन में कई लोग कष्ट झेलते रहते हैं। दबंग की दबंगई से हमेशा डरते हैं, लेकिन यह वास्तविक है कि आज भारतीय ग्रामीण परिवेश में जिस कदर राजनीति का दबंगईकरण हो गया है उससे तो ऐसा लगता है कि दबंग जब चुनाव जीतेगा/बंदूक चलाएगा/गोलियों पर गोलियाँ चलाएगा/खुषिशयाँ मनाएगा/कोई मरे/उसकी बला से/... दबंग जब चुनाव हारेगा/वह भी किसी दलित से/दबंग बंदूक चलाएगा/गोलियों पर गोलियाँ चलाएगा/हारने वाले को सबक सिखाएगा।

कविता संग्रह की कविताएँ दलितीय आत्म-दु:खबोध से भरी कविताएँ हैं, उसमें इतिहास है उस परम्परा का जिसमें एक सामान्य आदमी किस तरह अपनी अन्त्यजीय भूमिका में आ जाता है, किस तरह वह अस्पृश्यता के कुचक्र में फँस जाता है, किसी का भला करने के चक्कर में। और फिर उस चक्रव्यूह में वह इस तरह फँस जाता है कि वह उससे कभी उबर ही नहीं पाता। वह छुआ-छूत के इस गहरे दलदल में धँसता ही चला जाता है, क्योंकि जिसका उद्धार किया गया, वह नहीं चाहता है कि उद्धारक फिर कभी उठे। इस पुरावृत्तीय भूमिका को इस संग्रह की एक कविता 'घोड़ा बनने की भूल' में बखूबी बताया गया है-उस दिन पथ में बड़ी दलदल थी/और हमारा रथ दलदल में/बुरी तरह फँसा था/हमने तुम्हें लगाम सौंपी/और खुद हम सब/आदमी से घोड़ा बन गए थे।/रथ को खींचने में/हमारी गर्दनें छिल गई थीं/और आज यह सूखी-सख्त चमड़ी/गवाह है/कि हम सचमुच आदमी से घोड़ा बन गए थे।/बामशक्कत, बामुश्किल/ रथ दलदल से निकल/जब डामर की पक्की और चौड़ी/सड़क पर आया तो हमने सोचा/कि अब तो सड़क पक्की है/डामर की है/और चौड़ी भी है/तो फिर हम भी अपने को/क्यों न समझना शुरू करें आदमी!/लेकिन इससे पहले/कि हममें से कुछ लोग/अपने को आदमी समझते/तुम चाबुक चटकाने लगे/कुछ ऐसे/जैसे हम आदमी नहीं/सचमुच घोड़े ही थे।

दलित समाज को हर स्तर पर संघर्ष करना पड़ता है...ब्लाटिंग पेपर/जिस तरह सोख लेता है/स्याही की तरलता का/उसी तरह अस्पृश्य भाव ने/मानव का स्वाभिमान को सोख लिया।...ऐसे स्वाभिमान शून्य 'बहिष्कृत भारत' के/'मूक नायक' के लिए तुम्हारा संघर्ष/पानी के लिए संघर्ष/ज्ञान के लिए संघर्ष/दर्शन के लिए संघर्ष/आच्छादन के लिए संघर्ष/भीतर संघर्ष/बाहर संघर्ष/संघर्ष ही तुम्हारे जीवन का/बन गया स्थायी भाव/सौ अभावों के बीच/बस यही भाव!

भारत के आधुनिक समाज की यह विडम्बना ही कही जाएगी कि लोकतांत्रिक विचारों और मूल्यों तथा समानता और भाईचारे के प्रचार-प्रसार के बावजूद जातिगत भेदभाव एवं छुआछूत जैसी बीमारियाँ हमारे समाज का अपरिहार्य अंग बनी हुई हैं। प्रगतिशील और जनवादी विचारों और मूल्यों का समर्थन करने वाले लोग भी अपने जातिवादी संस्कारों का मोह नहीं त्याग पा रहे हैं। लेकिन सेक्स के मामले में कुछ छलिए, सवर्ण समाज के लोग अपने जातिवादी चेहरे को छुपा लेते हैं या स्थगित कर देते हैं

और यौन-वृत्ति के बाद पुनः ब्राह्मणवादी संस्कारों के खोल में लौट जाते हैं। इसीलिए इस संग्रह की एक रचना भारत की प्रजा और उसके प्रजातंत्र को धिक्कारती है। उस मानसी प्रवृत्ति को धिक्कारती है जो औरत की अस्मत को सिर्फ अपने भोग-विलास की चीज समझते हैं, और उसे सरेराह लूट लेते हैं, उसे लज्जित करने का प्रयास करते हैं, इसीलिए कवि कहता है कि गन्ने के खेत में/रेत-रेत होती/औरतों की अस्मत!/भारत के लस्टम-पस्टम प्रजातंत्र/तू धन्य है, तुझे धिक्कार है!/दरिन्दो जाओ/अपनी पत्नियों से जाकर/अपनी इस मर्दानगी का/बखान करो/देखो, उनकी आँखों में/तुम्हारा महिमामण्डित देवत्व/आज खण्डित है/तुम्हारे बच्चे/तुम्हें पिता नहीं/पिशाच समझेंगे।

जातिप्रथा नामक कलंक के कारण ही दलित वर्ग जीवन की महत्त्वपूर्ण सुविधाओं और आवश्यकताओं से वंचित रहा है। जीवन जीने की असुविधाओं ने इस वर्ग को हीन भावना से ग्रसित कर दिया है। जिससे वह उबरना चाहते हुए भी उबर नहीं पा रहा है। दलितों का हर जगह समाज में अनादर ही होता रहा है। यहाँ तक कि देहात में तो उनकी स्थिति और भी बद्तर है। उनको दो जून की रोटी पेट भरने तक के लिए मयस्सर नहीं है। इसलिए मेरे हाथ में मेरी भूख है/लेकिन रोटी नहीं,/मेरे हाथ में नंगापन है/लेकिन लँगोटी नहीं/मेरे हाथ में मेरी जहालत है/लेकिन नहीं किताब/मेरे इन सवालों का माँगे कौन जवाब? इस स्थिति को तभी समझा जा सकता है जब वह दर्द हमने भोगा हो। क्योंकि बगैर भोगे दलित वर्ग के प्रति वह संवेदना लाना थोड़ा मुश्किल है, कहते हैं न घायल की गति घायल जाने। दीपक जी के इस संग्रह का दलित इस वर्ग वैषम्य की पराकाष्ठा की वजह से ही सवर्ण वर्ग और शोषक वर्ग को कहता है कि 'तू अछूत बनकर देख.../तू अछूत बनकर देखेगा/देखेगा तो देगा दिखाई/बार-बार/तेरे मुख से उच्चरित/'वसुधैव कुटुम्बकम' का नारा/नौटंकी का खेल/जा, अपने घर जा/अपने चार बच्चों में से किसी एक बच्चे के माथे पर/काला टीका लगा,/उसका नाम 'बुद्धू' रख, उसे बात-बात पर दुत्कार,/उसे 'कमीन' कहकर पुकार/साधन-सुविधाओं के बँटवारे में/गैर-बराबरी का उसके साथ/करके बरताव देख/फिर अपने उस बच्चे का ताव देख!'

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि दीपक जी का यह संग्रह दलित समाज को वैचारिक आधार पर संगठित करके सामन्ती ब्राह्मणी शोषण, उत्पीड़न और जातिगत भेदभाव से मुक्ति के लिए संघर्ष की प्रेरणा देता है। उनके इस संग्रह की कविताएँ दलित समुदाय से जुड़कर उनके साथ आत्मीय संबंध बनाकर और उनसे मिले जीवनानुभवों को पकड़कर रचनात्मक स्तर तक ले जाने में पूर्णतया कामयाब हुई हैं। उनकी समस्याएँ पाठकों को आश्वस्त करती नजर आती हैं। इस संग्रह की कविताएँ दलित की समस्याओं को, उनके विभिन्न पक्षों को, विविध आयामों में अभिव्यक्त करने की ईमानदार कोशिश है। साथ ही विषम राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक परिवेश में दलित, शोषित निम्नवर्ग एवं उपेक्षित वर्ग की शोषणजन्य पीड़ा तथा शोषण मुक्ति के हेतु उनमें प्रस्फुटित संघर्षशील दलित चेतना की अभिव्यक्ति दीपक जी के इस संग्रह में बखूबी देखी जा सकती है। बेगार के विरुद्ध समय-समय पर दलित वर्ग में जो प्रतिक्रियाएँ हुईं उनका प्रतिबिंब भी उनके संग्रह में प्रतिबिम्बित होता है। इसमें दलितों के प्रति अपनी सहानुभूति ही नहीं व्यक्त की गई है अपितु उनके प्रति आक्रोश भी व्यक्त किया गया है। इसमें सवर्ण मानसिकता और दलित मन-स्थिति के मूल मर्म और गर्हीत प्रभाव को समझकर उसे उसकी ही

जमीन पर धराशायी किया है।

इस संग्रह की कविताओं में श्रमशील मानवता का चित्रण है। इस संग्रह के माध्यम से दीपक जी ने वर्ग वैषम्य, संघर्ष और दबाव तथा मूल्यों के ह्रास का अहसास तीव्रता से कराया है, और अपने रचनात्मक चिंतन द्वारा जीवन निर्माण के लक्ष्य को व्यंजित किया है। नव निर्माण के प्रति अपनी सजगता को ध्वनित किया है, उनकी कविताएँ जीवन के इतिहास को भोगे हुए यथार्थ के रूप में प्रस्तुत करने में सफल हुई हैं।

स्वानुभूति की प्रगाढ़ता, मार्मिक मानवीय संवेदन और दारुण त्रासदी की सच्चाइयों के सम्मुचय से अनुस्यूत इस संग्रह को आँखों देखा वृतांत भी कह सकते हैं। स्मृतियों का कोलाज कुछ भी कह सकते हैं, लेकिन भोग्यमान भयावह यथार्थ से इंकार नहीं कर सकते। अभी तक आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की बात की जाती थी, लेकिन दीपक जी के इस संग्रह की कविताएँ यथार्थोन्मुख आदर्शवादी स्वरूप लिए आत्मालाप और संवाद की कविताएँ हैं, जिसमें वास्तविकता और व्यावहारिकता का ध्यान भी रखा गया है।

यह संग्रह भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों ही दृष्टियों से नयापन लिए हुए है। विषय-वस्तु बेहद रोचक है और शैली अत्यंत प्रभावशाली।

देवेन्द्र दीपक सदैव से ही प्रयोगधर्मी रचनाकार रहे हैं। हर बार उनकी रचनाएँ पाठक को चकित करने की मंशा के साथ प्रकाशित होती रही हैं। यह संग्रह पाठक को बिल्कुल ही एक नए जगत में ले जाता है। इस संग्रह की कविताओं में गहन अन्तर्वेदना है, भावों के ज्वार के पीछे विचारों की गहनता है तथा कोरी भावुकता के स्थान पर गंभीर बौद्धिकता है। उन्होंने यथार्थ को विश्लेषित करने और शोषण के आतंक को साक्षात करने के लिए रहस्यमय और भय की पद्धति न अपनाते हुए उसमें अपनी सामाजिक-राजनीतिक समझ को आद्यन्त कायम रखा है। उनका यह संग्रह चुनौतियों, सवालों और समस्याओं से भरा हुआ है। उनकी कविताओं में नाटकीय तत्वों का समावेश उनकी प्रमुख विशेषता है।

वस्तुतः इस संग्रह से उम्मीद बँधती है कि दलितों की आवाज को जनमानस तक न केवल पहुँचाने बल्कि समाज के सभी वर्गों में अस्पृशीय मानसिकता को बदलने में कामयाब होगा, एवं दलित साहित्य के क्षेत्र में भी इसका पर्याप्त आदर और सम्मान होगा।

संपर्क : सबलगढ़, जिला-मुरैना (म.प्र.)

डॉ. ब्रह्मजीत गौतम

मुट्ठी भर मरोड़

जबसे दोहे के प्रथम चरण को आधार बनाकर श्री ओमप्रकाश भाटिया 'अराज' (दिल्ली) द्वारा 'जनक छंद' की सृष्टि हुई है, तबसे दोहा छंद के परिवार में अनेक सदस्यों का आगमन हो चुका है। अपने नूतन छंदों से दोहा-परिवार को समृद्ध और अभिवृद्ध करने में डॉ. अराज के बाद डॉ. प्रसाद 'निष्काम', श्री मिर्जा हसन 'नासिर', श्री ओमशरण आर्य 'चंचल', आचार्य जगदीश प्रसाद सारस्वत 'विकल', श्री शिवशरण दुबे, श्री सुभाष यादव 'भारती', श्री कृष्ण स्वरूप शर्मा 'मैथिलेन्द्र', श्री दयानंद जड़िया 'अबोध' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी शृंखला में श्री गिरिमोहन गुरु 'नगरश्री' का नाम भी उल्लेखनीय है, जिन्होंने अपने 'मरोड़' छंद से दोहा-परिवार को उपकृत किया है।

श्री नगरश्री एक प्रतिभा-सम्पन्न रचनाकार हैं। 'मरोड़' छंद की रचना में उन्होंने सोरठा और दोहा की एक-एक पंक्ति का सहारा लिया है। अर्थात् 11-13 और 13-11 मात्राओं का विधान! अंग्रेजी के सॉनेट की तरह उन्होंने पहले और चौथे तथा दूसरे एवं तीसरे चरण में तुकांत का विधान किया है। इस विधान से मरोड़ से सृजन में रोचकता, सरसता और श्रम-साध्यता तो आयी ही है, 'मरोड़' नाम की सार्थकता भी सिद्ध हुई है। यदि छंद में घुमाव-फिराव न हो, तो 'मरोड़' कैसा? इस छंद के उद्भव के विषय में स्वयंश्री गुरु का कथन है- तोड़ मरोड़ निचोड़ / दोहे का दोहन किया/साथ सोरठा तन किया/दो छंदों को जोड़।

'मुट्ठी भर मरोड़' में कुल 56 छंद है, जिनमें तीन छंदों की भूल से पुनरावृत्ति हो गयी है। इन छंदों में कवि ने वर्तमान जीवन की भरपूर झाँकी प्रस्तुत करने की चेष्ट की है। कहीं उपदेश है तो कहीं प्रेरणा। कहीं यथार्थ है तो कहीं कल्पना। हर व्यक्ति को अपने बचपन के दिन अवश्य याद आते हैं। इस अंतर्भूत इच्छा को कवि ने अपने घर की ओर लौटते, भूले-भटके ढोर की उपमा देकर कितनी सहजता से व्यक्त किया है, देखिये- मन बचपन की ओर/रह-रह वापस जा रहा/मानो निज घर आ रहा/भूला-भटका ढोर

शहरीकरण की ओर बढ़ रही ग्राम्य सभ्यता पर कवि का यह प्रश्न भी मन को मथने में सफल हुआ है- ढूँढ़ रहा है गाँव/कहाँ गयीं पगडंडियाँ/गली, मुहल्ले मंडियाँ / पूछ रही हैं भाव।

निस्संदेह इन छंदों में तुक-विधान सम्बन्धी अनेक शिथिलताएँ हैं, कुछ स्थलों पर न्यून मात्रा-दोष भी विद्यमान हैं, किन्तु कथ्य समृद्ध है, अतः कृति पठनीय है। एक नवीन छंद की उद्भावना के लिए कवि को बधाई।

पुस्तक : मुट्ठी भर मरोड़, रचनाकार : श्री गिरिमोहन गुरु 'नगरश्री'

संपर्क : होशंगाबाद (म.प्र.)
मो. 9425189042